CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि.४४०
१०४२

संघ मित्रा

8.15

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्ति-संख्या....................
र-कार्ड
जैन (शोध) संस्थान
ग्रागार
वाराणसी-५
ा एक अध्ययन
री..............................

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६०४४०

भाई श्री अजित प्रसाद जी को
सप्रेम

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
10482
नरिया, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बेनीपुरी कृत

संघमित्रा

एक अध्ययन

लेखक

प्रो० विश्वरंजन

प्रकाशक

ज्ञान भारती

सलेमपुर, छपरा

मूल्य : २·००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

© प्रकाशक

प्रकाशक :

ज्ञान भारती

छपरा

मुद्रक :

श्री माधव मुद्रणालय

बाँसफाटक, वाराणसी

मूल्य : २·००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०८२

विषय-सूची

क्र० सं०	विषय	पृष्ठ
१.	साहित्य में नाटक का स्थान	१
२.	नाटक और एकांकी	५
३.	ाटक के तत्त्व	७
४.	कथा वस्तु या कथानक	८
५.	नाटक के पात्र	१०
६.	कथनोपकथन	११
७.	देश-काल	१२
८.	ऐक्यत्रय	१२
९.	एकांकी तत्त्व	१३
१०.	हिन्दी नाटक और एकांकी को विकास-यात्रा	१४
११.	श्री राम वृच्च वेनीपुरी-एक नाट्य शिल्पी	२५
१२.	संघमित्रा का कथानक	२९
१३.	संघमित्रा की महत्वपूर्ण पंक्तियाँ	३२
१४.	संघमित्रा की महत्वपूर्ण पंक्तियाँ अर्थ और व्याख्या	३४
१५.	संघमित्रा की समीचा	४८
१६.	संघमित्रा के पात्र	५२
१७.	महेन्द्र	५५
१८.	नीलमणि	५७
१९.	मल्लिका	६०
२०.	संघमित्रा में वर्णित स्थल कलिंग	६२
२१.	पाटलिपुत्र और गंगा	६३
२२	संघमित्रा के सम्भावित प्रश्न और उत्तर संकेत	६४

१०८८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य में नाटक का स्थान

साहित्य की विभिन्न विधाओं की चर्चा के क्रम में कविता, कहानी या उपन्यास, नाटक, निबंध आदि का नाम लिया जाता है। निश्चित रूप से ये नाम इसलिए अलग-अलग लिये जाते हैं कि इनमें कथ्य और तथ्य की समानता नहीं पायी जाती। अर्थात्, कविता, कहानी, नाटक, निबंध, ये सब पृथक् विधायें हैं साहित्य की।

किन्तु, पूर्व इसके कि विधाओं का विवेचन किया जाए, यह उचित होगा कि अपने अध्ययन की परिधि पहले ही निश्चित कर ली जाए। चूँकि यहाँ नाटक का अध्ययन ही अभीष्ट है, अतः अनुशीलन के आयाम अन्य विधाओं के सन्दर्भ में नहीं, इष्ट में ही सीमित होने चाहिए। तथापि, अन्य विधाओं की सापेक्ष समीक्षा तो परिहार्य है ही।

मानवीय ज्ञानेन्द्रियों के संवेगों एवं संवेदनाओं के आधार पर पुरामनीषियों ने साहित्य को पारिभाषित कर इसे दो प्रकार के काव्यों में विभाजित किया—श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य। दर्शन श्रवण की अपेक्षा अधिक सम्प्रेषक होता है। अस्तु, आँखों की राह जो दिल में उतर जाय, वह कान से आनेवाले की तुलना में ज्यादा विश्वसनीय, सुबोध और समीप लगता है।

श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य दोनों ही साहित्य हैं। इस कारण, दोनों ही अपेक्षा रखते हैं आपरिशंसन (Appreciation) की। और, इस आपरिशंसन में दोनों के लिए समान योग और विद्या की आवश्यकता नहीं पड़ती। श्रव्य काव्य शब्दाश्रित है, तो दृश्य काव्य शब्द और भंगिमा दोनों के युग्म पर। कविता, कहानी ये श्रव्य काव्य के प्रकार हैं, दूसरी ओर नाटक, रूपक दृश्य काव्य के।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्ति है : काव्येषु नाटकं रम्यं। काव्य-प्रसूनों में नाटक ही सर्वरमणीय है। पौर्वात्य ज्ञान-सागर जिन वेदों के पृष्ठों में बँधा हुआ है, उनकी संख्या चार ही नहीं, पुराणों के अनुसार पाँच है। यह पाँचवाँ वेद नाटक ही है। नाट्य-वेद उपसंहार है अन्य चार वेदों का जिनके एकल उद्देश्य थे; यथा, ऋगवेद संवाद हेतु, यजुर्वेद अभिनयार्थ, सामवेद संगीत के लिए तथा अथर्ववेद रस निमित्त। संवाद अभिनय और संगीत की त्रिवेणी रसवंती होकर नाट्यवेद का संगम वन गयी। नाटक कहें या नाट्यवेद, दोनों परस्पर पर्याय हैं।

आचार्य भरत के शब्दों में, नाटक लोकत्रयी का भावानुकरण है। 'त्रैलोकस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्त्तनम्। हृदय के भाव, भूलोक या आकाश लोक या पाताल लोक, किसी भी लोक में उत्पन्न, जब अनुकृत किये जाते हैं, वहाँ नाटक स्वयं उत्पन्न हो जाता है।

नाना भावोसंपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्॥
लोक वृत्तानुकरणं नाटके तन्मयाकृतम्॥

नाटक को मानसिक स्थितियों की अनुकृति के रूप में भी स्वीकृत किया गया है। (दशरूपककार) किंतु, साहित्य-दर्पण में नाटक के स्थान पर रूपक को ही अभिनय प्रधान रूप का आरोप माना गया है। तथापि, प्रचलन और प्रसिद्धि में रूपक न स्वीकारा गया, नाटक ही रह गया। रूपक कहें या नाटक कहें, दोनों एक ही बोध देते हैं। हालाँकि, साहित्य-दर्पण में रूपक के दस रूपों में ही एक दिखलाया गया है नाटक। फिर भी, यह एक ही, शेष नौ रूपों का रूप वन गया जैसे।

प्राचीन काव्य पाठ के लिए रचे जाते थे, आधुनिक उपन्यास अध्ययन के लिए लिखे जाते हैं; किसी कथा का, पात्रों द्वारा, रूपायन प्रस्तुत करने के लिए नाटक शिल्पित होते हैं, जिन पात्रों के बीच ही कथ्य और कथनोपकथन वितरित रहते हैं। तो, जहाँ कि काव्य और उपन्यास वर्णन और तादात्म्य दर्शाते हैं, वहाँ दूसरी ओर नाटक अनुकृत करते हैं कथन और कर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के द्वारा; अनुकृति की प्रक्रिया में जो आधारभूत आवश्यकताएँ उभरती हैं, उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में नाटक की रचनात्मक विशिष्टताएँ परीक्षित और व्याख्यायित होनी चाहिए।

यों, नाटक और उपन्यास तथ्यतः एक हैं किंतु, फिर भी वे सर्वथा भिन्न हैं। और, इन दोनों के बीच स्पष्टतम महान अन्तर है कि दोनों की शिल्प शैली (Technique) एक नहीं है। शिल्पशैली के इसी पार्थक्य के कारण नाटक और उपन्यास का अध्ययन पृथक्-पृथक् किया जाता है। नहीं तो, कथानक की अनिवार्यता दोनों के लिए है ही। हाँ, नाटक का विस्तार रंगमंच की ज्यामितीय सीमा में ही सिमटा रहता है, जबकि उपन्यास अनन्तता तक विस्तृत हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि देश, काल, पात्र के त्रिकोण में ही अपने सम्प्रेषण को आबद्ध करना पड़ता है नाटककार को, जब कि सम्प्रेषण का कोई प्रतिबंध नहीं रोकता एक उपन्यासकार को। सीमा में सजी-कसी अनुकृति प्रभाव को सघन कर देती है, इसलिए नाटक उपन्यास के अनुपात में ज्यादा प्रभावी होते हैं।

सम्प्रति, एक प्रवृत्ति उभरी है नाटकों के पठन की। गो कि, नाटक भी उपन्यास की तरह पढ़े जाने लगे हैं। नाटक तो मूलतः प्रदर्शन के लिए होते हैं, लेकिन आधुनिक नाटकों में नाटककार पर्याप्त संकेतों के द्वारा नाटक के पाठक को उन सभी स्थितियों का संकेत देने लगे हैं, जिनसे नाटक एक पठनीय विधा भी बन गया है। इब्सेन के नाटक (जो अंग्रेजी नाटक-साहित्य की महान धरोहर हैं) ऐसे संकेतों के लिए सुख्यात हैं। बर्नार्ड शॉ के नाटकों में भी बहुतेरे संकेत नाटक के अध्ययन के लिए सहायक रूप में दिये हुए हैं। हिन्दी में लिखे नाटकों में भी यह बात पायी जाने लगी है। कथन के स्वर और अर्थ, भंगिमाओं के कोण और विस्तार, स्थितियों के स्वरूप और विधान सब कुछ नाटककार संकेत की भाषा में लिख देता है। इस प्रकार नाट्य-साहित्य अब दृश्यकाव्य भर ही नहीं रह गया। समीकरण की यह प्रवृत्ति सभी विधाओं में देखी जा रही है और इस प्रकार साहित्य एक अप्रत्याशित सामान्यता को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त करता जा रहा है। गद्य और पद्य के मध्य भी भौतिक अंतर समाप्तप्राय हो चुके हैं। फिर, नाटक और उपन्यास क्यों वंचित रहते ?

साहित्य का सृजन सहज हो या प्रेरित हो, दोनों ही स्थितियों में सृजन का उत्स निहित होता है उस प्रतिक्रिया में जो सृष्टा और स्थिति के परस्पर संयोग से उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह कि साहित्य समाज का दर्पण नहीं; यह अभिव्यक्ति है रचनाकार की उस प्रतिक्रिया की जो उत्पन्न हुई स्थितियों के संघात से। स्थितियाँ भौतिक या मानसिक दोनों ही हो सकती हैं। इस नाते, साहित्य का स्थितियों से (समाज से) गहरा-अन्योनाश्रय संबंध है। उसमें भी विशेषतः नाटक का, जो जनमानस के बहुत निकट का है, तो समाज से अपेचाकृत ज्यादा प्रत्यच और प्रबल संबंध होता है।

नाटक प्रत्येक स्वस्थ साहित्य की भाँति मनोरंजन और शिचण दोनों करता है, अपनी स्वाभाविक सोद्देश्यता के कारण। कला का यही कांतासम्मित प्रयोजन है। यह कला के लिए भी है, जीवन के लिए भी है। अर्थात्, नाटक का जनजीवन से अविच्छेद्य तादात्म्य है। तभी तो, अनुकृति में भी मूल के दर्शन कर दर्शक स्वाभाविकता से सिक्त रहता है और विपर्यय में यथार्थ का प्रत्यय प्राप्त करता है। नाटक की सम्प्रेषणीयता ही इस मनोवैज्ञानिक उपलब्धि का कारण है।

कला की दृष्टि से नाटक को शरदपूर्णिमा का प्यारा-सा चाँद माना जा सकता है, जिसमें चौसठों कलाएँ पूर्णता से व्याप्त रहती है। नाट्यवेद को चार वेदों का उपसंहार या संश्लेषण माना गया। इसलिए, कहा जा सकता है कि यह सभी कलाओं का समन्वय है, सभी शास्त्रों का संगम है, सभी योगों का योगफल है।

न स योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते ।
सर्वशास्त्राणि शिल्पानी कर्माणि विविधानि च ॥

—भरत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटक और एकांकी

यांत्रिकता और वैज्ञानिकता ये दो ऐसे तत्त्व हैं, जिनके चलते जीवन की संकुलता उत्तरोत्तर घनी होती जाती है। तथा, इसी के अनुदैर्घ्य जीवन की प्रतिबद्धता और यापनपद्धति भी निरुपित होती है। अवकाश के प्रति निवेदित साधें और संकल्प अपनी संतुष्टि के निमित्त साध्य को साधन के समीप ला ही देते हैं। इसीलिए अब प्रबंधों की जगह प्रगीतमुक्तक आये, उपन्यासों के बदले लघुकथा का प्रचलन हुआ तथा नाटकों के स्थान पर एकांकियाँ अवतरित हुई। अर्थात्, आधुनिक युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है प्रगीत-मुक्तक, लघुकथा और एकांकी। भागते हुए क्षणों को पकड़ने की कोशिश में हैरान आज के आदमी के लिए, परम्पराओं की रेखाओं को मिटा देने की कोशिश करने वाले आज के इंसान के लिए तथा कुंठा भोग कर भी आशा के स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले आज के मनुष्य के लिए प्रबंध व्यर्थ है, उपन्यास उबा देने वाला है तथा नाटक जानलेवा उपक्रम है। जब क्षण दैनिक और वार्षिक गति के अनुसार घूमते थे प्रबंध प्रिय लगते थे, उपन्यास उत्कृष्ट लगते थे और नाटक नयनाभिराम लगते थे। किंतु, आज समय का भाव बहुत चढ़ गया है। बड़ा महँगा हो गया है समय। आवश्यकता भी पूरी नहीं हो पाती। फिर कौन चाहे प्रबंध, उपन्यास, नाटक ?

रंगमंच का संगठन ढीला ही नहीं, टूट-सा गया, तो नाटक भी कैसे बचे रह पाते ! इसलिए, नाटकों की समृद्धि उतनी नहीं हुई, जितनी कविता, कहानी या निबंध की। परिणामतः, बोलते-गाते चित्रपटों ने नाटक को गौण कर दिया। तथापि, इससे यह तो हुआ कि नाट्यकला में नयी शिल्पशैली उत्पन्न हो गयी। कथानकों के 'सीनेरियों' (वाक्पटीय रूप) प्रकाशन के पथ पर आने लगे। रेडियो की लोक प्रियता बढ़ी तो शब्द और संगीत द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले रेडियो नाटक निकलने लगे जिसका आस्वादन दूरस्थ या समीपस्थ सभी श्रोता करते। समय के मूल्योन्नयन से नाटकों से अधिक एकांकी या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वो..ापरक नाटक (Monologue) प्रचलन में आये। तात्पर्य यह कि आधुनिक-युग में शिल्पशैली के अनुसार नाटक के चार नये भेद प्रकट हुए — सीनेरियो, रेडियो नाटक, मोनोलॉग तथा एकांकी। परम्परा से प्राप्त नाटक, प्रहसन और गीति-नाट्य तो रहे ही।

वेदों में पुरुरवा-उर्वशी का गीति-नाट्य, पुराण के पृष्ठों में वर्णित रंग-शालाओं का प्रदर्शन, 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना में कालिदास के पूर्व के भास का उल्लेख, पाणिनी की अष्टाध्यायी में कृशाश्व और शिलालि जैसे सूत्रकारों का वर्णन, ये सारी बातें भारतीय वाङ्मय के नाट्य साहित्य की दीर्घायु का प्रमाण देती हैं। Our drama developed in divine atmosphere लिखकर डा० कीथ ने भारतीय नाट्यसाहित्य के कार्वनिक विकास की शुभ्रता का परिचय दिया है। भारतीय नाटक जिस माध्यम से परिचालित होते हैं, उसे अभिनय कहा जाता है। अभिनय के चार सामान्य भेद निर्धारित किये गये हैं—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। किन्तु, तत्त्व के आधार पर नाटक को संवाद, गान, अभिनय एवं रस का यौगिक कहा जाता है। भारतीय चिंतकों ने वस्तु, पात्र और रस को नाटकों का अवयव माना है।

स्वरूप की दृष्टि से हिन्दी के नाटकों का विभाजन एकांकी और अनेकांकी में कुछ विद्वानों ने किया है। इतना ही नहीं, एकांकी नाटक के भी दो भेद किये गये हैं। एक वह जिसमें अंक ही दृश्य होता है, पर्दा तभी गिरता है जब नाटक समाप्त होता है। दूसरी श्रेणी के एकांकी नाटक वैसे हैं, जिनमें एकाधिक दृश्य होते हैं। ऐसी एकांकियों में नाटककार दो से चार दृश्यों तक का विधान प्रस्तुत करता है।

कम से कम पात्रों द्वारा न्यूनतम विस्तार में मानव प्रकृति को कलात्मक रीति से प्रस्तुत करना ही एकांकी नाटक का अभीष्ट होता है, जो कदापि सरल कार्य नहीं है। इसलिए अनेकांकियों की अपेक्षा एकांकियों का महत्त्व अधिक है। और नाटककार की सिद्धि भी एकांकियों के संगुंफन में ही परीक्षित होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो, नाटक के तत्त्वों का विचार, भारतीय और विदेशी दोनों दृष्टियों से, करने पर, जो तत्त्व हमें अनिवार्य प्रतीत होते हैं, वे हैं--कथावस्तु, पात्र, कथनोपकथन, देश-काल, उद्देश्य तथा शैली। इसी प्रकार एकांकियों के तत्त्व हैं—एक घटना या परिस्थिति या समस्या। उलझे-सुलझे जीवन के अनेकानेक क्षणों में से एक कोई क्षण ही आधार ही बन जाता है एकांकी का। तदनुसार, एक लक्ष्य अथवा साध्य ही एकांकीकार का अभीष्ट होता है। इतिवृत्तात्मकता, विस्तृति, अलंकृति तथा भावाभिभूत चरित्र-चित्रण एकांकी की सम्भावनाओं से परे होते हैं। प्राचीन दार्शनिक अरस्तू ने स्थान, कार्य एवं काल के जिस ऐक्यत्रयी को नाटक के उपूदप प्रभाव के लिए अनिवार्य बताया, एकांकी के लिए भी इनकी उपादेयता गौण नहीं मानी जा सकती। यों कहें, सफल एकांकी तभी यादों के साथ रहती है, जब ऐक्यत्रयी (Three unities) का निर्वाह कुशलता के साथ उसमें हुआ रहता है। एकांकीलेखक की पूँजीभूत अनुभूति, रसमयता, विवेक धारा, अभीष्ट, संदेश आदि ही एकांकी के आधारभूत रचनात्मक तत्त्व हैं। शिल्पशैली, संविधान एवं कथनोपकथन, ये सब यदि यथार्थ के धरातल पर नहीं रहते तो एकांकी भाव और बोध को स्पर्श नहीं कर पाती। अस्तु, नाटकों के मूल्यांकन के मानदण्ड एकांकियों की कसौटी नहीं बन सकते। नाटक वह पुष्प है, जिसका पराग है एकांकी, नाटक वह प्रकाशपुंज है जिसका वर्णपट है एकांकी। एक में अनेक, विन्दु में सिन्धु।

नाटक के तत्त्व

पूर्व अध्याय में नाटक और एकांकी के तत्त्वों का संकेत दिया जा चुका है। यहाँ थोड़ा विस्तार से नाटक के तत्त्वों पर विचार प्रस्तुत है।

भारतीय मनीषियों ने नाटक के जिन तत्त्वों को निर्धारित किया है, वे हैं—वस्तु, नायक तथा रस। भारतीय विचारों के अतिरिक्त पाश्चात्य विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नाटक के अध्ययन-अनुशीलन के क्षेत्र में बहुत विकसित हुए हैं। पाश्चात्य विचारकों ने नाटक के तत्व रूप में मात्र तीन ही तत्त्व नहीं बताये। उनके अनुसार नाटक की रचना ६ तत्त्वों से होती है। यथा, कथानक, पात्र, कथनोपकथन या संवाद, देशकाल, उद्देश्य एवं शैली। ऐसा हम कह सकते हैं भारतीय मनीषियों के द्वारा तीन मुख्य तत्त्वों को ही ६ तत्त्वों के रूप में पाश्चात्य विद्वानों ने विभाजित किया। इस अभिमत का कारण स्पष्ट है, क्योंकि पाश्चात्य विचारों ने जैसे तीन मुख्य शीर्षकों के ६ उपशीर्षक बना दिये।

कथा-वस्तु या कथानक

कोई भी नाटक किसी कथानक का ही रंगमंचीय प्रदर्शन होता है। बिना किसी कथानक के नाटक आखिर किस तथ्य को प्रस्तुत करेंगे? यों तो, प्रत्येक श्रव्यकाव्य का आधार होता ही है कोई न कोई कथानक, तथापि, नाटक जैसे—दृश्यकाव्य के लिए भी कथानक का महत्त्व कम नहीं। यह सत्य है कि किसी उपन्यास या कहानी या प्रबन्ध काव्य के लिए कथानक की जिस रूप में उपादेयता होती है, वैसी किसी नाटक के लिए नहीं। अर्थात्, उपन्यास या कहानी या प्रबन्ध तथा नाटकों की कथावस्तु में अन्तर होता है। यह अन्तर मात्र विस्तार की सम्भावनाओं को लेकर ही है। उपन्यास सीमा में सिमटे रहने के लिए बाध्य नहीं है, जबकि नाटक ३-४ घंटे भी मुश्किल से दर्शकों को घेरे रह पाते हैं।

कथानक एक निश्चित प्रारम्भ और विकास की प्रक्रिया में ही पनप कर, परिणति को प्राप्त करते हैं। और कथानक के वर्द्धन की जो स्थितियाँ होती हैं, वे भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विद्वानों के अनुसार मात्र पाँच हैं—प्रारम्भ, प्रयत्न (या विकास), प्राप्त्याशा (या चरमसीमा), नियताप्ति (या उतार) और फलागम (या अन्त)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटक के कथानक का प्रारम्भ ही कथाक्रम का उत्स होता है, जहाँ संघर्ष (Crisis) युक्त घटना जन्म ग्रहण करती है। प्रयत्न नाटक के इष्ट की सिद्धि के लिए किये गये उपक्रम का नाम है; यही तो कथानक का विकास है। जब लगे कि नाटक का इष्ट सिद्ध हो पाएगा वहाँ प्राप्त्याशा चरमसीमा पर पहुँच कर बिल्कुल तन जाती है। इसे अंग्रेजी में Climax कहा गया है। फिर, जब आशा विश्वास की बाँहें थाम लेती है, नियति का आभास मिलने लगता है, तब यहीं से उत्कण्ठा शनैः-शनैः शांत होने लगती है। गो कि, तनाव उतार में ढलने लगता है। तब, प्रारम्भ में बोयी गयी कथा, एक यात्रा के बाद, एक परिणाम में शेष हो जाती है, जब दर्शक यह घोषणा सुनने के लिए तैयार हो जाता है कि 'लो, नाटक समाप्त हो गया।' यह अंत ही फलागम है।

जब कथानक फलागम का अभियान प्रारम्भ करता है, तो संधान के अंतराल कतिपय चमत्कारपूर्ण स्थल भी उत्पन्न होते हैं। भारतीय नाट्य-सिद्धान्तों के अनुसार ये स्थल हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य। बीज, कथा का प्रारम्भ है। बिन्दु वह योगक है जिससे मुख्य कथा एवं प्रकारान्तर कथा का सम्बन्ध जुड़ जाता है। पताका उन प्रासंगिक कथाओं को कथानक के वर्द्धन के लिए प्रस्तुत करती है, जो नाटक को प्रभावोत्पादकता के लिये उपयोगी होते हैं। प्रकरी पताकाओं के समान नहीं, अपितु वे आती हैं और मुख्य कथा के प्रभाव में वृद्धि कर शेष हो जाती हैं। और, कार्य तो नाटक का परिणाम होता ही है।

नाटक की कथावस्तु और अर्थ-प्रकृतियों को युक्त करने वाली संधियाँ भी पाँच ही होती हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण। मुख संधि बीज उत्पन्न करती है; प्रतिमुख से बीज का अंकुरण होता है, गर्भ में बीज पल्लवित होता है, विमर्श के कारण बीज के विकास को विघ्न झेलना पड़ता है और अन्त में निर्वहण हो जाने पर इष्टसिद्धि हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि वर्णन की दृष्टि से नाटक की कथावस्तु पर विचार किया जाए, तो दो प्रकार के कथानक प्राप्त होंगे—दृश्य एवं सूच्य। रंगमंच पर प्रदर्शित होने वाले कथानक के भाग को दृश्य कहा जाता है एवं सूचनाओं से कथानक का जो अंश संकेतित होता है, उसे सूच्य कहा जाता है।

किन्तु, यदि आधार का विचार कर कथानक के भेद निर्धारित किए जाएँ तो प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र, तीन कोटि के कथानक प्राप्त होंगे। ऐतिहासिक या पौराणिक तथ्यों पर आधारित कथानक प्रख्यात माने जाते हैं। दूसरी ओर, कल्पना की नींव पर आधारित कथानक उत्पाद्य कहे जाते हैं। तथा, इतिहास या पुराण के यथार्थ को कल्पना से मिश्रित कर एक यौगिक उपलब्धि को कथानक का जब आधार बना दिया जाता है, तो ऐसा कथानक मिश्र बन जाता है।

आजकल न तो वर्णन की दृष्टि से और न आधार की दृष्टि से ही कथानक की परीक्षा हो रही है, वरन् समस्या का विचार ही वर्त्तमान मानदण्ड बन गया है। समसामयिक जीवन समस्याओं के ताने-बाने से नित्यप्रति बुना जा रहा है। ऐसे में समस्याओं का संबंध जीवन तथा इसकी अभिव्यक्ति से बहुत निकट का हो गया है। मुख्यतः, आज का समय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, व्यक्तिगत समस्याओं की अनंत सीमा में उलझ गया है, भटक गया है। अस्तु साम्प्रतिक कथानकों की ईड़ा और पिंगला में समस्याएँ ही बन गयी हैं।

नाटक के पात्र

नाटक का कथानक यदि प्राण है, तो नाटक के पात्र उस प्राण का धारक शरीर होते हैं। कथानक वह चेतना है जिसकी अभिव्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियाँ हैं नाटक के पात्र। नाटक वह पालकी है जिसे ढोकर ले चलने वाले कहार हैं नाटक के पात्र। बिना पात्र के नाटक अभिनीत होगा ही कैसे?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पात्रों के समुदाय में चुम्बकीय आकर्षण वाला जो पात्र होता है तथा जिसके द्वारा नाटक का परिणाम निर्णीत होता हैं, वह पात्रों का पात्र नायक कहा जाता है। नायक की भावनाओं की इज्जत करने वाली स्त्री नायिका कही जाती है। और भावनाओं को आँचल की छाँह देने वाली स्त्री या तो पत्नी हो सकती है या प्रेमिका। अस्तु, ये ही नायिका होती हैं।

नायकों के कुल भर का लेखा-जोखा अगर लिया जाय तो ज्ञात होगा कि धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशांत तथा धीरोद्धत, चार प्रकार के नायक होते हैं। कुछ विचारक नायकों को अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ भी मानते हैं। इसी प्रकार नायिका के संबंध में भी निष्कर्ष निकाले गये हैं। नायिकाओं का भाव-व्यवहार देख कर उन्हें तीन कोटि में रखा गया है— स्वकीया, परकीया, सामान्या। लेकिन, नायक-नायिका के अतिरिक्त भी कुछ पात्र ऐसे होते हैं, जो नाटक के भाग्य-विधाता होते हैं। यथा, खलनायक, विदूषक, विट और चेट। इन सभी प्रकार के पात्रों को लेकर नाटक के कथानक और अभिनय के बीच रसोद्रेक करा देना, नाटककार के लिए बहुत साध्य होता है। अपने इस दुरुह कार्य को नाटककार तभी संपन्न कर सकता हैं, जब कि वह चरित्र-चित्रण में दक्ष हो।

कथनोपकथन

कथानक नाट्य-पुष्प है, पात्र पुष्प-पंखुड़ियाँ हैं और कथनोपकथन या संवाद पराग है। नाटक की यति और गति संवादाश्रित होती है। अस्तु, संवाद का नाटक के लिए मूर्धन्य महत्त्व है।

स्वीकृत मान्यातओं के अनुसार संवादों का मृदु, गतिमय, सुस्पष्ट, विवेक संगत, सोद्देश्य एवं मनोरम होना आवश्यक होता है। यदि संवाद सरस नहीं होते, तो नाटक प्रभावशाली नहीं हो पाता। साथ ही, संवाद तभी ग्राह्य होते, जब वे वक्र नहीं हों और तभी ध्यानाकर्षक होते जब वे लालित्य--

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्ण हों, आकर्षण से सिक्त हों। यदि अश्लीलता, वक्रता, क्लिष्टता, संदिग्धता संवाद में आ जाएँ तो संवाद प्रभावहीन हो जाता है।

कथनोपकथन के संबंध में भी आचार्यों ने यह बताया है कि वे तीन प्रकार के होते हैं—नियत श्राव्य, सर्व श्राव्य, अश्राव्य। जो संवाद किसी पात्र विशेष के लिए होता है, वह नियत श्राव्य कहा जाता है। जो संवाद सवों को सुनाने के लिए दिया जाता है, वह सर्व श्राव्य है। और जो मुँह के भीतर ही बुदबुदा कर रह जाता है, वह संवाद अश्राव्य है।

स्वगत संवादों को समसामयिक नाटककारों ने अशेष-सा बना दिया है। किन्तु, किसी स्थान पर स्वगत संवादों की उपादेयता अनिवार्य हो जाती है।

देश-काल

अभिनय को यथार्थ की मांसलता प्रदान करने के लिए देश और काल का समन्वय सर्वथा आवश्यक होता है। परिस्थितियाँ, वातावरण और परिवेश ये ही तो देशकाल हैं। यदि अभिनय के पात्र और कथनोपकथन का सामंजस्य देश-काल से नहीं बैठता, तो नाटक असफल ही नहीं व्यर्थ हो जाता है।

ऐक्यत्रय

ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने नाटक के उपूदय प्रभाव के निमित्त ऐक्यत्रय का समवाय अनिवार्य बताया। स्थल, समय एवं कार्य का ऐक्य स्थापित किये बिना नाटक हो ही नहीं सकता, ऐसा उनका विचार है। किन्तु, हिन्दी के नाटकों के साथ हीं नहीं, समस्त भारतीय नाटकों के साथ भी यही बात है कि इस ग्रीक-दर्शन को भारतीय नाटककारों ने नहीं स्वीकारा। पश्चिमी देशों में भी अब देखा जा रहा है कि नाटकों के लिए ऐक्यत्रय की सार्थकता समाप्तप्राय हो चुकी है। किंतु, एक प्रवृत्ति इधर हाल में उभरी है कि एकांकियों में इस ऐक्यत्रय का निर्वाह आवश्यक माना जाने लगा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिल्प-शैली—यदि भावों की काया का आवरण है भाषा, तो आवरण का सौन्दर्य इसकी शैली। नाटक की भाषा और भावों की अभिव्यक्ति एक शिल्पशैली में ही निरुपित होती हैं। यह शिल्पशैली ही नाटककार की निजी विशिष्टता है। दूसरे शब्दों में नाटककार अपने व्यक्तित्व का निरुपण करता है शिल्पशैली में। Style is the man एक कहावत भी है। यदि शिल्पशैली में सप्राणता और सौष्ठव का अभाव रहता है, तो नाटक की सजावट कसावट विखर जाती है।

उद्देश्य—अभिष्ट ही परिणति होती है किसी अनुष्ठान की। नाटक भी एक अनुष्ठान ही है। अतः नाटक निश्चिततः किसी अभीष्ट के निमित्त ही प्रस्तुत होता है। कोई भाव या कोई रूप, कोई याद या कोई कल्पना, कोई सपना या कोई सच्चाई कुछ न कुछ दिखाना ही नाटककार का उद्देश्य होता है। उद्देश्य की ऊर्जा पर ही निर्भर करता है नाटक का प्रभाव।

रस—रस ही सत है। यह सत् ही सत्य है। और सत्य ही नाटक है। भले ही सत्य आँखों में झाँकने वाला ही क्यों न हो। अतएव, नाटक ही रस है। या, रस ही नाटक का सत् है। बिना रस के जैसे फल व्यर्थ हो जाता है, नाटक भी बिना रस के अर्थहीन होते। रस चाहे जो भी हो, खट्टा हो मीठा हो, तीखा हो, खारा हो! या, रस चाहे जो भी, हास्य हो शृंगार हो, करुण हो या वीर हो, शांत हो या रौद्र हो, वीभत्स हो कोई भी हो। रस होना चाहिए, तभी नाटक भी होगा।

एकांकी के तत्त्व

मात्र यह कि नाटक अनेकांकी होता है और एकांकी में एक ही अंक होता है, कुछ और भी कारण ऐसे हैं कि नाटक और एकांकी दोनों सर्वथा भिन्न विधायें हैं साहित्य की। कला, विधान एवं कथावस्तु सभी दृष्टिकोणों से नाटक और एकांकी पृथक हैं। इसलिए नाटक के तत्त्व और एकांकी के तत्त्व भी भिन्न-भिन्न हैं। हाँ, दोनों के तत्वों में समानता भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकांकी का मुख्य तत्त्व है कोई एक ही घटना या परिस्थिति या समस्या। यदि ऐसा नहीं होता, तो एकांकी को गँठी-बँधी रचना छिन्न-भिन्न हो जाएगी। उद्देश्य में प्रवणता लाने के लिए एकांकीकार उत्प्रेरक को सफलता ही स्वीकारता है और अपनी एकांकी को किसी एक घटना विशेष या परिस्थिति विशेष या समस्या विशेष पर केन्द्रित करता है। यदि उत्प्रेरक की एकलता के चयन या निर्धारण में एकांकीकार मनोवैज्ञानिक सत्यों की उपेक्षा करता है, तो एकलता का महत्व नहीं रह जाता है। अतः उत्प्रेरक की एकलता मनोवैज्ञानिक विवेक से पूर्ण होनी चाहिए।

फिर, दूसरा आवश्यक तत्त्व है अनिवार्य संक्षिप्तता। एकांकी के विस्तार में अलंकृति, पुनरावृत्ति, व्याख्या, विस्तृति की कोई सम्भावना नहीं। यथाशक्य संक्षिप्ता में आवश्यक कथ्य से ही काम चलाने की जरूरत पड़ती है, सफल एकांकी के लिए।

इस संक्षिप्तता का प्रभाव एकांकी के संवाद, शैली, उद्देश्य, सत्र पर पड़ता है। इसलिए एकांकी के संवाद चुस्त-दुरुस्त होते हैं। संवाद के लिए नहीं, संवाद आवश्यक अभिव्यक्ति के लिए होते। और इन संक्षिप्त संवादों के वक्ता पात्रों की संख्या भी संक्षिप्त हो जाती। जो जगह भरने के लिए, यों ही नाटक में स्थान प्राप्त कर लेते हैं, एकांकियों में उनके लिए कोई भी जगह नहीं।

अन्य तत्त्व एकांकी के वे ही हैं जो नाटक के हैं।

हिन्दी-नाटक और एकांकी की विकास-यात्रा

नाटक का आविर्भाव मनुष्य की प्रसन्नता और आमोद का सूचक था। भावों का आलोड़न का भंगिमाओं की भाषा में व्यक्त होना एक चिरंतन प्रक्रिया है। और, भाव जब भंगिमाओं में बदल जाते हैं, अभिनय हो जाता है। साथ ही, एक दूसरी भी मनोवैज्ञानिक बात है कि अनुकरण मानवीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति है। जिस कालखंण्ड में आदि पुरुष ने अपने अहेर का इतिवृत्तात्मक वर्णन अंगोंपांगों की मुद्राओं के द्वारा अपनी प्रेयसी को किया था, अनुकरण की प्रकृति से अभिभूत होकर, नाटक का बीज उसी दिन बो दिया गया।

नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ये बातें खींच-तान की लग सकती हैं। किन्तु प्राचीन विद्वानों ने अपने प्रयोग और पर्यवेक्षण से जो परिणाम निष्पन्न किये, उनपर तो विश्वास करना अध्ययनोचित धर्म-सा है। आचार्य भरत के अनुसार नाटकों की उत्पत्ति दैवी है। ब्रह्मा ने चार वेदों के उपसंहार रूप में नाट्यवेद की रचना की। विश्वकर्मा ने रंगमंच निर्मित किया। शंकर ने ताण्डव और पार्वती ने लास्य प्रदर्शित किया। विष्णु ने नाट्य शैलियों की चार संख्या निर्धारित की।

पौराणिक युग में भी नाटकों का प्रदर्शन होता था, ऐसी सूचना हमें प्राप्त है। आदिकवि वाल्मीकि की 'रामायण' में प्रसंग भी है :

"वादयन्ति तथा शान्ति लास्यन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च॥"

'हरिवंश' में रामजन्म तथा कौवेररम्भाभिसार के अभिनय का विवरण है। 'महाभारत' में भी नाटक शब्द का उल्लेख है :

'नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिकारकाः।'

नाटकों की उत्पत्ति में धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ, उत्सव, पुत्तलिका नृत्य, छाया-प्रदर्शन एवं नृत्य के भेदाभेद सबों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। पाणिनी के बहुत पूर्व ही शिलालिन् एवं कृशाश्व जैसे नटसूत्रों के रचनाकार उत्पन्न हो चुके थे। तब आचार्य भरत ने अपने अमर ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' का लेखन किया। तत्पश्चात्, धनञ्जय, विद्यानाथ, विश्वनाथ आदि प्रसिद्ध विद्वान चर्चित हुए।

नाटककारों की चर्चा के क्रम में सर्वप्रथम स्रष्टा का ही नाम लिया जाता है। ऐसी कथा है कि स्रष्टा ने 'समुद्रमंथन' तथा 'त्रिपुरदाह' नामक नाटकों की रचना की एवं सरस्वती ने 'लक्ष्मी स्वयंवर' नामक नाटक रचा। भरत मुनि ने भी 'यामदग्नयज्ञ', 'कुसुमशेखर-विजय' और 'शर्मिष्ठा-ययाति' नामक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटकों की रचना की। भास के नाटक भी अति प्राचीन हैं, जैसे 'स्वप्नवासव-दत्ता', 'चारुदत्त', 'अभिषेक नाटकम्' आदि। यों, संस्कृत में नाटकों का बड़ा समृद्ध भण्डार है, तथापि दुखांत नाटकों का बड़ा अभाव है। ऐसे दुखांत नाटक के रूप में भास का 'उरुभंग' उल्लेख्य है। दुखांत और सुखांत नाटकों को लेकर ही भारतीय नाटक एवं यूनानी नाटक भिन्न हो जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि यूनानी नाटकों की भांति भारतीय नाटक जनसमाज के लिए नहीं लिखे गये। मात्र ब्राह्मण और क्षत्रिय जैसे आभिजात्य वर्गों के लिए रचे जाने वाले भारतीय नाटक जीवन की सामान्यता से अभिसिंचित नहीं हो पाये। इसके विपरीत, यूनानी नाटक जीवन की सामान्यता को ही प्रस्तुत करने के लिए रचे गये। सबों के जीवन में सुख भले ही न आवे, किन्तु दुख तो अद्यपर्यन्त रहता ही है। Happiness is an occasional episode in the tragic drama of life हार्डी ने लिखा। तात्पर्य यह कि दुख ही जीवन की कथा सत्य। इसीलिए अमर दार्शनिक अरस्तू ने दुखांत या त्रासद नाटकों को ही नाटकों का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि माना। त्रासद नाटकों की परिभाषा निर्धारित करते हुए अरस्तू ने लिखा – A tragedy, then, is the imitation of an action that is serious and also as having magnitude complete in itself, in language, with pleasurable accessories, each kind, brought in separately in the parts of the work, in a dramatic not in a narrative form with incidents arousing pity and fear where with no accomplish its catharsis of such emotions. तथापि, भास, शूद्रक, अश्वघोष, कालिदास, विशाखदत्त, नारायण, हर्ष, भवभूति, राजशेखर, मुरारि, जयदेव आदि संस्कृत नाट्य-साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में आज भी दीपित हैं, जिनके नाटकों में भारत की सुखी-घनी संस्कृति झाँकती है। ईसा की ११ वीं शती बाद संस्कृत साहित्य में नाटक कम आये, ज ...
नाटक दक्षिणायन हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत भाषा का लोकजीवन से असंपृक्त हो जाना ही प्रमुख कारण बन गया संस्कृत में नाटकों के नहीं लिखे जाने का। प्राकृत बन गयी लोकभाषा तो राजशेखर ने 'कर्पूरमंजरी' जैसा नाटक लिखा। और भी नाटककारों ने प्राकृत में नाटक रचे। फिर अपभ्रंश ने प्राकृत की जगह ले ली, तो १३ वीं शती में 'रासक' खूब लिखे गये। ये रासक धर्म के प्रचार का बड़ा लोकप्रिय साधन बने। वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों ने कृष्ण कथा के रासक रचे। नन्ददास तथा ध्रुवदास ने रासक लिखकर प्रचुर प्रसिद्धि प्राप्ति की। ये रासक रासलीलाएँ हैं, पद्य में लिखीं, सुर और लय में बँधी।

और, इन्हीं रासकों से हिन्दी नाटक निष्पन्न हुए। नौटंकी तथा स्वांग-नाटक रासक के ही रूपांतरण हैं। हिन्दी साहित्य आधुनिक काल का प्रारम्भ जिस भारतेन्दु युग में हुआ, उसके पूर्व जो पद्यमय नाटक रचे गये, उन पर रासक का प्रभाव सुस्पष्ट है। यहाँ तक कि भारतेन्दु युग में ही रचित नाटक 'चन्द्रावली' पर रास की छाप साफ है। इतना ही नहीं पारसी नाटकों पर भी रास का प्रभाव बड़ा व्यापक पड़ा। १३ वीं शती के आस-पास ही मिथिला में अभिनीत होने वाले संस्कृत-नाटकों में मैथिली के गीतों का समावेश होना प्रारम्भ हो गया और तदन्तर मैथिली में भी नाटकों रचे जाने लगे।

ईस्वी सन् १६६३ में बनारसीदास ने 'समयसार' नामक नाटक को लिखा। किंतु, यह मूल कृति न हो कर कुंदकुंदाचार्य के ग्रंथ का अनुवाद है। रामायण का रूपांतरण कथनोपकथन में प्रस्तुत किया प्राणचन्द चौहान ने, जिसे उन्होंने 'रामायण महानाटक' कहा। देव ने 'देवमायाप्रपंच' लिखा, हृदयराम ने 'हनुमन्नाटक' का अनुवाद प्रस्तुत किया, यशवंत सिंह ने कृष्ण मिश्र के 'प्रवोध चंद्रोदय' को भाषांतरित किया। किंतु जोधपुर-नरेश यशवंत सिंह ने 'प्रवोध चंद्रोदय' के अनुवाद में नाटकीय टिप्पणियाँ भी यथास्थान दीं। जैसे, कब किस पात्र का आगमन या प्रस्थान होता है, ये सारी बातें भी उन्होंने स्थान-स्थान पर लिखीं। महाराज विश्वनाथ सिंह कृत 'आनन्द-रघुनन्दन' को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने प्रथम नाटक के रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में समादृत किया। ई० सन् १७०० के आस-पास लिखा गया यह नाटक ही वस्तुतः हिन्दी-नाटकों का सूत्रपात करता है। तथा, सन् १८५७ ई० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता श्री गिरधरदास ने 'नहुष' नामक नाटक लिखा। पता नहीं, यह नाटक कहीं पूर्णरूप में प्राप्य भी है या नहीं।

अंग्रेजी नाटक का प्रभाव धीरे-धीरे फैल रहा था। और, इसका प्रभूत प्रभाव पड़ा बंगाल पर। फलतः बंगाल में नाटकों की रचना प्रारम्भ हो गयी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को जगन्नाथपुरी की यात्रा के क्रम में बंगला नाटकों को देखने-समझने का संयोग मिला। इस संयोग ने भारतेन्दु को भी हिन्दी में नाटकों को लिखने की प्रेरणा दी। और, इनके प्रयासों की बल्लरी कुछ ऐसा फैली कि कई नाट्य-प्रसून इधर-उधर दीखने लगे। इतना ही नहीं, भारतेन्दु ने पारसी रंगमंच का अखाड़ा तोड़ने का भी आंदोलन चलाया, क्योंकि पारसी नाटक अंग्रेजी एवं फारसी प्रभावों से ग्रस्त होते थे।

वस्तुतः, हिन्दी नाटक का सूर्य भारतेन्दु-युग के ही क्षितिज पर सर्वप्रथम उदित हुआ। हिन्दी-साहित्यकाश में एक और नक्षत्र उगा नाटक। किंतु, अनिश्चय की स्थिति जैसी द्विधापूर्ण होती है, भारतेन्दु युग में भी यही हाँ-ना वाली स्थिति उत्पन्न हुई। परिणाम यह हुआ कि नाटकों स्वर-स्वरूप क्या हो, यह स्थिर नहीं हो पाया। भारतेन्दु-युग प्रयोग का युग था। विद्वान संस्कृत-नाट्य-परम्परा की ओर उन्मुख थे। साथ ही, पाश्चात्य प्रभाव के भी लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। इसलिए, भारतेन्दु ने 'मुद्राराक्षस', 'कर्पूर मंजरी' जैसे संस्कृत के नाटकों का अनुवाद किया तो 'भारत दुर्दशा' या 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' जैसे मूल नाटक भी लिखे।

भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाट्यकारों ने मुख्यतः अपने नाटकों के कथानक को पौराणिक या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित किया। साथ ही साथ, कल्पना से निर्मित कथानकों का भी मंचन भारतेन्दु युगीन नाटककारों ने प्रारम्भ कर दिया। भारतेन्दु ने किंवदंतियों को ही नाटक का कथानक बना देने का अनूठा प्रयोग किया। 'अंधेर नगरी चौपट राजा' भारतेन्दु की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही कृति है। किंतु, भारतेन्दु-युग में पात्रों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रचलन नहीं था, और न कलात्मकता से पात्रों को प्रस्तुत करने की पद्धति ही बन पायी थी। यों कहें, नाटक किस शिल्पशैली में रचे जाएँ यह निश्चित नहीं हो पाया था भारतेन्दु-युग में। यह युग रीति-काल तथा आधुनिक काल को संधि होने के कारण संक्रमण के परिणामों से वंचित न रह सका। एतदर्थ, पुराना छूट नहीं सका, नया आ नहीं सका, कुछ ऐसा ही हो गया भारतेन्दु-युग में।

भारतेन्दु-युग के नाटकों में युग-स्वर का निनाद अवश्यमेव सुनायी पड़ता है। writers are the weather cocks एक कहावत है। युग की प्रतिच्छवि अपनी रचनाओं में उतारने का प्रयास जो लेखक नहीं करता है, उसे युग बोध से हीन माना जाता है। किंतु, भारतेन्दुकालीन नाटककारों के नाटकों में युग-बोध का अभाव नहीं है। तभी तो, भारतेन्दु का नाटक 'भारत दुर्दशा', पंडित प्रतापनारायण मिश्र का नाटक 'काल-प्रभाव' आदि पढ़कर तत्कालनी समाज की स्थिति का ज्ञान हम प्राप्त कर पाते हैं।

संक्रमण या उत्क्रमण के चरणों में यदि आदर्शों का अभाव हो जाता है, तो स्थितियों का संतुलन हो बिगड़ जाता है। अस्तु, स्थितियों के संतुलन हेतु आदर्शों के प्रति उन्मुख होना पड़ता है। भारतेन्दु-युग संक्रमण को स्थिति में विकसित हो रहा था, इसलिए उस समय समाज को अतीत के गौरव से परिचित कराना आवश्यक हो गया था। क्योंकि अतीत में आदर्श निहित थे। आदर्शों के इसी उपस्थापन के क्रम में भारतेन्दु ने 'नीलदेवी' नामक नाटक लिखा, या 'महाराना पद्मावती' और 'महाराणा प्रताप सिंह' नामक नाटक राधाकृष्ण दास ने लिखे। आदर्श मूलक नाटकों को रचना की यह परम्परा उत्तरोत्तर विकसित होती हो गयी। जयशंकर प्रसाद के समय में इस परम्परा ने स्वास्थ्यलाभ किया, जो अबतक भो वर्त्तमान है।

कहा जाता है कि साहित्य सामाजिक समस्याओं का संग्रह है। समाज किन समस्याओं का भार अपने कंधों पर ढो रहा है, इसकी जानकारी सामाजिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य से प्राप्त हो जाती है। प्रायः प्रत्येक जीवंत साहित्यकार सामयिकता से सिक्त होता है। भारतेन्दुयुगीन नाटककार भी तत्कालीन समस्याओं को अपने नाटक में व्यक्त करते थे। भारतेन्दु ने अपने समाज की धार्मिक समस्या को लेकर 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नामक नाटक लिखा तो वृद्ध विलाप' नामक नाटक सामाजिक समस्याओं पर लिखा प्रेमघन ने। पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने जुआरी-खुआरी' नामक सामाजिक नाटक लिखा तो बालकृष्ण भट्ट ने बाल-विवाह की समस्या पर 'बाल-विवाह नामक ही नाटक लिखा।

शिल्पशैली के निश्चयन के लिए जिस प्रकार भारतेन्दुयुग प्रयोग की उड़ाने भर रहा था, उसी प्रकार भाषा के स्वरूप-निर्धारण के लिए भी यह युग तोड़-जोड़ कर रहा था। गद्य ता खड़ी बोली में बदल गया था, किंतु पद्य अभी भी ब्रजभाषा की गोद में खेलता रह गया। यथा पात्र, तथा वचन के कारण, नाटक में भिन्न-भिन्न बोलियों का समावेश हो गया। केशवराम भट्ट लिखित 'रणधीर प्रेममोहिनी' या 'सज्जाद सम्बुल' नामक नाटक बिभिन्न बोलियों के सम्मिश्रण के उदा देने वाले दृष्टांत हैं। इन सारे तथ्यों के अतिरिक्त, इस युग में देश-काल संबंधी ऐक्य महत्त्व नहीं प्राप्त कर पाये थे।

इस प्रकार, वस्तुतः, हिन्दी के आधुनिक नाटकों का युग अपनी निजी विशिष्टताओं के साथ जयशंकर प्रसाद के नाटकों के साथ प्रारम्भ होता है। गो कि, भारतेन्दु कालीन प्रभाव प्रसाद के नाटकों पर भी पड़े, फिर भी प्रसाद ने अपने को परम्परा की परछाई से बाहर कर लिया।

देश प्रेम का जो जन जागरण भारतेन्दु-युग में शुरु हो रहा था, उसे पूर्ण प्रसार दे दिया सन् १९२१, १९३०, १९४१ ई॰ के रास्ट्रीय आंदोलनों ने। स्वदेश को महिमा-गरिमा के गान के लिए अतीत के पास अनेक शब्द मिले, अनेक स्वर मिले। और अतीत के इसी कनकाभ क्षितिज पर ज्योतित मिले वीर पुंगव चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि। फलतः प्रसादजी ने देश-प्रेम पर आत्मोत्सर्ग विषयक नाटक लिखे। प्रसादजी की यह परम्परा सेठ गोविन्ददास के 'हर्ष' तथा उदयशंकर भट्ट के 'दाहर' में भी अक्षुण्ण रही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसादजी के नाटकों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से एक सबल राष्ट्रीयता का मंत्र दिया है, संकीर्ण प्रांतीयता तथा धार्मिक संघर्षों को समाप्त करने का आह्वान किया है। हरिकृष्ण प्रेमी ने प्रसादजी के इस अंतर्स्वर को ही अपने नाटकों का स्वर बनाया। प्रेमीजी के 'रक्षाबंधन' या 'विषपान' नामक नाटक ऐसे उदाहरण हैं। इन नाटकों में साम्प्रदायिक एकता पर प्रेमी ने जो परिष्कृत प्रकाश डाला है। सच्चा धर्म मानव धर्म है, साम्प्रदायिक धर्म तो मानव-मानव के बीच दीवार बनता है।

प्रसादजी के नाटकों में यदि अतीत-आसक्ति दृश्य है, तो दूसरी ओर प्रौढ़ बौद्धिकता भी प्राप्त है। इस सम्मिलन के परिणामस्वरूप प्रसादजी के नाटक विधान के वैविध्य से पूर्ण दीखते हैं। किन्तु, सेठ गोविन्ददास ने 'हर्ष' नामक नाटक में प्रसादजी से भी आगे अपने को कर दिया है तड़क-भड़क को लेकर। पुनः आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'राठौर' नामक अपने नाटक में महत्तम प्रवाह का निर्वाह किया है। उदयशंकर भट्ट ने पौराणिकता एवं ऐतिहासिकता को ही अपने नाटकों का प्राण-वायु बना दिया।

कतिपय नाटककारों ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक दृष्टांतों का प्रतिपादन करने का भी सफल प्रयोग किया। प्रसादजी ने 'अजातशत्रु' में, रामवृक्ष बेनीपुरी ने अमर नाट्यकृति 'अम्बपाली' में, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने 'महात्मा ईसा' में तथा श्री सूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव ने "वैशाली-पतन" में यह प्रयोग किया। सम्प्रति ऐतिहासिक नाटकों की रचना शेषप्राय ही हो रही है। ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा की समाप्ति का कारण है ऐतिहासिक अनुसन्धानों का न होना। प्रसादजी के समय या उनके बाद के भी समय में इतिहासवेत्ता नित्यप्रति अनुसन्धानों में व्यस्त रहा करते थे। इतिहास के पीले पड़ गये पन्नों में जो संस्कृति का संगीत सूख-सा गया था, वह अनुसंधानों के कारण पकड़ में आता था। नाटककार अपने नाटकों में संस्कृति के गान इसलिए मुखरित करने में समर्थ होते थे। डा० काशीप्रसाद जायसवाल, डा०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अल्तेकर जैसे इतिहासवेत्ता के अवदान तत्कालीन नाटककारों के लिए वरदान सिद्ध हुए। किन्तु, अब कहाँ वे अनुसंधानकर्त्ता ?

समसामयिक नाटकों में समस्याओं की कँहर ही सुनायी पड़ती है। यह स्वर इसलिए और तीव्र हो गया है कि पश्चिमी नाटकों का प्रभाव बड़ा विशद रूप में आज के हिन्दी नाटककारों पर पड़ा है। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, इब्सेन, डब्लू० बी० इट्स, टी० एस० इलियट, स्टेफेन स्पेंडर आदि अंग्रेजी नाटककार अधुना हिन्दी नाटककारों के लिए अनुकरणीय बन गये हैं। पंडित गोविन्द वल्लभ पंत (अंगूर की बेटी), पंडित लक्ष्मी नारायण मिश्र (सिन्दूर की होली', सेट गोविन्ददास (मंगल सूत्र), उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, डा० रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा आदि ने वैयक्तिक, यौन, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, आर्थिक जैसी बहुरंगी समस्याओं पर नाटक लिखे। मनोवैज्ञानिकता आज के नाटकों का नितांत आवश्यक तत्त्व बन गयी है। इसलिए आज के नाटकों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा शिल्पशैली के प्रति विशिष्ट सजगता प्रचुरता से विद्यमान हो गयी है। अनेकायामी चिन्तन-धाराओं, प्रभावक शक्तियों तथा उत्प्रेरक वादों के चलते, अम्प्रति समय, मेले में भुला गये बच्चे-सा हो गया है। चूँकि साहित्य के स्वरूप में समय झाँकता है, इसलिए समसामयिक समस्याओं का समावेश साम्प्रतिक नाटकों में स्वाभाविक ही नहीं, अनिवार्य है।

शिल्पशैली या रचना कौशल की दिशा में वर्त्तमान हिन्दी के नाटककारों ने अभूतपूर्व योगदान दिया है। रंगमंच की रचना से लेकर नाटक के लेखन और मंचन तक पारस्परिक रचना-कौशल में परिवर्त्तन हो गया है। समसामयिक जीवन की संकुलता और प्रतिबद्धता के कारण ये परिवर्त्तन परिहार्य हो गये। अब किसी के पास इतना अवकाश नहीं है कि निश्चिन्ततापूर्वक कई घंटों तक नाटक देखता रहे। २-३ घंटे भी नाटक देखने के लिए अपने व्यस्त और संकरे समय में से निकालना सम्भव नहीं लगता। साथ ही, यांत्रिक वैज्ञानिकता ने चलचित्रों का प्रचलन बढ़ाकर नाटकों को गौण कर दिया। इसलिए, आज के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटककार विस्तार के नहीं, संक्षिप्तता के आग्रही हो गये हैं। अनावश्यक विवरणों के लिए अब नाटक में स्थान नहीं। अर्थात्, आज के नाटककार अनिवार्यता में विश्वास करते हैं, अलंकृति में नहीं।

पुनः, पात्रों के प्रस्तुतीकरण तथा उनके संवादों के सम्प्रेषण में यथार्थता के साथ-साथ मणिभोय पारदर्शिता को अनिवार्यता आज के नाटककारों ने स्वाकारी। कुछ ढंग वदल दिये गये, कुछ गढ़ लिये गये। इसी क्रम में स्वागत संवादों का औचित्य समाप्त हो गया। नाटकों की समाप्ति की प्रचलित पद्धतियाँ भी परिवर्त्तित हो गयीं। प्रसादजी ने अपने नाटकों का अन्त विशेष ढंग से कराना प्रारम्भ किया। प्रसादजी के पूर्व हिन्दी में त्रासद नाटकों (Tragedy) की संख्या अत्यल्प या नगण्य थी। किन्तु, प्रसादजी ने त्रासद नाटकों की रचना कर, नाटक का एक और वातायन खोल दिया। इस विशिष्ट उपलब्धि को प्रसादजी की चेष्टाओं का परिणाम मानकर कुछ नाट्यालोचकों ने त्रासद नाटकों को प्रसादान्त नाटक भी कहा है। अंग्रेजी के नाटकों में जिस प्रकार दृश्यविधान सरल और संवाद स्पष्ट होते हैं, हिन्दी में भी नाटक को सरलता और स्पष्टता से युक्त किया गया। बर्नार्ड शॉ ने नाटक के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए जो कहा कि No crisis, no drama. उस विचार का विपुल व्यवहार आज के नाटकों में पाया जाता है। आज के नाटक द्वन्द्वों और नाटकीय स्वाभाविकता से पूर्ण होते हैं।

तथापि, आधुनिक युग में प्राचीन प्रतिमानों का भंजन पूर्णतः नहीं किया गया। 'प्रबोध चन्द्रोदय' और 'देवमाया प्रपंच' की परम्परा का अनुसरण करते हुए 'कामना' और 'ज्योत्स्ना' आदि रूपक रचे गये। रासक शैली में लिखे नाटक गीति-प्रधान होते हैं। गीत-नाटक की यह परम्परा भारतेन्दु की 'चन्द्रावली' में अनुपालित तो है ही, किंतु प्रसादजी के 'करुणालय' में सर्वांगीणता से समर्थित है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' एवं उदयशंकर भट्ट ने 'मत्स्यगंधा' की रचना कर गीति-नाट्य को जीवित रखा।

भले ही आज के कुछ विचारकों का यह कहना हो कि समकालीन समय-संकुलता के कारण उपन्यासों की जगह लघु कथाएँ आयीं और नाटकों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान पर एकांकियाँ आयीं, किंतु वास्तव में एकांकियों की परम्परा भारतवर्ष में बहुत पहले से चली आ रही है। संस्कृतनाटकों के अनेक प्रकारों में कुछ प्रकार ऐसे भी हैं जिनमें एक ही अंक का विधान होता है, यथा, भाण, वीथी, गोष्ठी, नाट्यरासक, व्यायोग, अंक, प्रहसन आदि। सुप्रचलित रासलीलाएँ भी तो एकांकियाँ ही हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' ही प्रथम एकांकी कहा जाना चाहिए। भारतेन्दु ने और भी कई एकांकी लिखे यथा 'प्रेमयोगिनी', 'सतीप्रताप', 'भारत-दुर्दशा' आदि। भारतेन्दुकालीन एकांकीकार श्री निवास दास भी अपनी एकांकी 'प्रहलाद-चरित्र' के लिए प्रसिद्ध हैं। पंडित बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, आदि इस युग के एकांकीकार हुए।

कुछ लोग भारतेन्दु को प्रथम हिन्दी एकांकीकार न मानकर प्रसादजी को उनकी एकांकी 'एक घूँट' के चलते हिन्दी के प्रथम एकांकीकार मानते हैं। एक विचार से यह कहना भी ठीक है। आज जैसी एकांकी लिखी जा रही है, वह सब पाश्चात्य प्रभावों से अभिभूत है। और, प्रसादजी की 'एक घूँट' एकांकी ही आधुनिक एकांकीकला का प्रथम नमूना है, इसलिए १९३९ में प्रकाशित यह एकांकी आधुनिक दृष्टि से प्रथम हिन्दी एकांकी कही जा सकती है। डा० नगेन्द्र ने भी इसी मान्यता का प्रतिपादन किया है। डा० नन्ददुलारे बाजपेयी ने प्रसादजी को एकांकीकला के क्षेत्र संस्कृत-नाट्यादर्शोन्मुखी बताया है। पंडित शान्तिप्रिय द्विवेदी भी प्रसादजी को संस्कृत के नाटकों की शैली का समर्थक तो बताया, किन्तु, आधुनिक आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तथा मनोवैज्ञानिकता का आग्रही भी कहा।

प्रसादजी ने 'एक घूँट' से एकांकी लेखन की जो आधुनिक धारा प्रवाहित की, उसमें त्वरण भरा सेठ गोविन्ददास ने (सप्तरश्मि, स्पर्श, अष्टदल आदि ; डा० रामकुमार वर्मा ने (रेशमी टाई, बादल की मृत्यु, चारुमित्रा, रजनी की रात आदि); श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने (नेत्रदान, सीता की माँ आदि); श्री उपेन्द्रनाथ अश्कने (देवताओं की छाया में, अंजोदीदी, तूफान से पहले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि), श्री उदयशंकर भट्ट ने (गिरती दीवारें, समस्या का अंत, अस्तोदय, पर्दे के पीछे आदि) तथा श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने (भोर का तारा, और मेरे सपने आदि)। नये एकांकीलेखकों में हंसकुमार तिवारी, प्रभाकर माचवे, सुमित्रानन्दन पंत, ब्रजकिशोर नारायण, जानकी वल्लभ शास्त्री, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, वीरेन्द्रनारायण पाण्डेय, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, सतीश्वर सहाय वर्मा, उमाकांत वर्मा, कुबेरनाथ राय आदि प्रमुख हैं।

सम्प्रति एकांकियों के कलेवर रेडियो नाटक, भावनाट्य, गीति-नाट्य आदि साँचों में भी ढल रहे हैं। प्रयोग और प्रयास के पथ पर हिन्दी एकांकी उत्तरोत्तर विकासशील है, साहित्य की स्वतन्त्र एवं अनिवार्य विधा बनने के लिए।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी—एक नाट्य शिल्पी

गेहूं और गुलाब, सौन्दर्य और सत्य, दोनों को एक कलम में बांध देने वाला शिल्पी निश्चय ही कलम का जादूगर है। साहित्य और राजनीति, जीवन और युग, दोनों को अपनी अभिव्यक्ति का जो दुलार दे, वह अवश्यमेव कोई व्यक्ति नहीं, संस्था है। शब्द और अर्थ, काया और प्राण दोनों को सँवार देने की क्षमता जिसे हो, वह भावों का मूर्धन्य चितेरा है। इतिहास और समय, अतीत और वर्त्तमान, दोनों को अपनी रचना को परिधि में समेट लेने वाला तथ्य और कथ्य का इन्द्रधनुषी स्रष्टा ही तो है। और, इन सारे विधेयों का एक ही उद्देश्य है—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी।

अम्बपाली, नेत्रदान, विजेता, सीता की माँ, संघमित्रा और सिंहल विजय जैसी अनेक नाट्यकृतियाँ जिनकी लेखनी का प्रसाद हों, वैसे नाट्यशिल्पी; माटी की मूरतें जैसी संस्मरण-पुस्तक के स्वनामधन्य लेखक; जंजीरें और दीवारें, धरती की धड़कनें, गेहूं और गुलाब, जयप्रकाश जैसी सुप्रसिद्ध पुस्तकों के प्रणेता श्री रामवृक्ष बेनीपुरी साहित्य, राजनीति एवं समाज सेवा के त्रयी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ ही, बालक, कैदी, कर्मवीर, योगी, जनता, हिमालय, जनवाणी, चुन्नू-मुन्नू तथा नई धारा जैसी ढेर-सी पत्रिकाओं के यशस्वी सम्पादक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी मूल सृजन एवं सृजन की चेतना को प्रोत्साहित करने वाले अक्षुण्ण निर्झर हैं।

व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को लेकर जो नक्षत्रत्व प्राप्त किया है श्री बेनीपुरी ने, वह परम्परा और प्रयोग का समन्वित अपवादी दृष्टांत है। जिसे संस्कृति को प्यार करने की प्रेरणा रामायण और गीता सरीखी पावन पुस्तकों से मिली, जिसे राजनीति की आंधी में गांधी के ऋचायित उपदेशों ने बहा दिया, जिसे भारतेन्दु के उदाहरण ने व्यक्ति नहीं संस्था बन जाने को प्रेरित किया और जिसे 'वन्दे मातरम्' के मंत्रोच्चार ने जननी, जन्मभूमि के लिए उत्सर्ग हो जाने को बाध्य किया, वैसे कलाकार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी भारतीय संस्कृति के वर्चस्वी तपःपूत हैं, आगत के कुंकुमी क्षितिज पर प्रगति और जागरण के सूर्य को उगा देने वाले तूर्य-वादक हैं।

जिस मन की छाया लाख-लाख पृष्ठों पर छितराई पड़ी है, उस मन की धारक काया की कमनीयता भी आवश्यकतः उल्लेखनीय हैं। मन के जैसे धनी बेनीपुरीजी, वैसे ही तन के भी। हँस दें, तो झुँझलाया हुआ आकाश मँडराते हुए मेघों से गदरा जाए, जिन दिशाओं के चेहरों पर शून्यता टँगी हुई हो, उनमें सरगम सज जाए; और, जो दूर किसी चिंतन में डूबा हुआ हो, वह पास चला आए। स्मिति, हास और अट्टहास—बेनीपुरी के अधरों पर सर्वदा सरसते रहते हैं। इनके मांसल शरीर की ऊष्मा जब वाणी में रूपांतरित होती है, तो 'करो या मरो' की ऊर्जा शिराओं में फैल जाती है। लेकिन, उम्र की ढलान पर, १९०२ ई० में अवतरित यह नक्षत्र बेनीपुरी, अब जरा जर्जरित हैं। तथापि, खँडहर बताते हैं कि इमारत बुलंद रही होगी। इन दिनों वे अपने नन्हें-मुन्नों को फलता-फूलता देखकर ही प्रसन्न हैं। आशीष और आशा, अब इन्हें ही बांटकर सौंदर्य की प्रतिमा लुटाने वाले, संस्कृति के स्वर फूंकने वाले, सत्य के स्वरूप गढ़ने वाले श्री रामवृक्ष बेनीपुरी अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन मना लेते हैं। अस्वस्थता की सीमाओं में अदम्य साहस, अपरिमेय भावनाएँ और अतुलित आकांक्षाएँ निश्चय ही हिलकोरें मार कर रह जाती होंगी, और वह बूढ़ा कलाकार अर्नेस्ट हेमिंग्वे का "ओल्ड मैन" बना समुद्र का फैलाव घूट घूट कर संतोष कर लेता होगा।

जो कीर्त्ति दिनकरजी ने अपने काव्य के द्वारा तथा श्री जय प्रकाशनारायण ने अपने विचारों द्वारा अर्जित की, वह बेनीपुरी जी ने अर्जित की अपने गद्य के द्वारा, अपने नाटकों के द्वारा। जयप्रकाश, दिनकर और बेनीपुरी बिहार के वैचारिक प्रवाह के उत्स रहे हैं। नवजागरण का उद्घोष, सामाजिक विषमता का अभिव्यंजन तथा सृजन के आयामों का उद्घाटन इन प्रवाह स्रोतों का अभियानी उद्देश्य रहा है। जयप्रकाश और बेनीपुरी तो मानो एक ही सिक्के के दो रूप। राजनीति के लिए जयप्रकाश, साहित्य के लिए बेनीपुरी अथवा राजनीति के लिए बेनीपुरी, साहित्य के लिए जयप्रकाश। पलायन नहीं, परिवर्त्तन का स्वर जयप्रकाश और बेनीपुरी ने निनादित किया। महापंडित राहुल सांकृत्यायन भी ऐसे ही स्वर के स्रष्टा रहे।

जिस प्रकार राजनीति और साहित्य के क्षेत्र में बेनीपुरी एक प्रतिमान बन गये हैं, पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका स्थान वैसा ही मूर्द्धाभिषिक्त है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शिवपूजन सहाय तथा रामवृक्ष बेनीपुरी पत्रकारिता जगत में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के पर्याय हैं। बेनीपुरीजी ने अपनी मांसल स्फूर्ति एवं क्षमाशील पद्धति के समाहारात्मक शिल्प द्वारा पत्रकारिता को एक नूतन संदर्भ प्रदान किया। यह कहना असंगत न होगा कि बेनीपुरी के लेखक को बेनीपुरी के पत्रकार ने सजाया है, संवारा है, समृद्ध किया है। स्थितियों के प्रति सजगता और संकल्पों के प्रति आसक्ति ये ही बेनीपुरी की सफलता के अवयव हैं।

किंतु, बेनीपुरी की प्रसिद्धि एक और महत्वपूर्ण तथ्य के कारण भी दिग्-व्यापिनी हुई। वह कारण है, उनकी शैली। किसी भी कलाकार की मौलिकता, उसकी शैली में ही सन्निहित होती है। Style bewrays us

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसी उक्ति इस सत्य की पुष्टि के लिए ही है। व्यक्ति और शैली का तादात्म्य परिपूर्णता की स्थिति प्राप्त हो जाने पर स्थापित हो जाता है। तब, व्यक्ति का शैली ही द्योतन कर देती है। खंजन की तरह फुदकने वाली लेखनी या जादू की छड़ी जैसी कलम से व्यंग, उद्‌बोधन, चिंतन, चित्रात्मकता एवं सरसता से सिक्त शैली का निसृत होना सर्वथा स्वाभाविक है। बेनीपुरी की शैली के ये ही चिह्न हैं। तथापि, बेनीपुरी की शैली राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की शैली का सस्तापन लिए नहीं, और न दिनकर की चिंतनता लिये हो है। महादेवी के संस्मरणों की बोझिलता बेनीपुरी के जीते-जागते संस्मरणों में नहीं आ पायी। आंचलिक ग्राम्यता बेनीपुरी की शैली में वैसे ही फबती है जैसे अँगूठी में नग। गद्य और पद्य, नाटक और कहानी सबों का संगुम्फन एक ही में—एक ही शैली में, बेनीपुरी की शैली।

अपनी शैली से वातावरण का निर्माण कर देना बेनीपुरी के लिए कोई कठिन कार्य नहीं। बेनीपुरी की लेखनी में चुम्बकत्व है। जो भी स्वर या व्यंजन लेखनी से स्पर्शित हुए, सबके सब उपपादित हो जाते हैं। बेनीपुरी की लेखनी मानो राम के चरण हों! 'छुअत शिला भई नारी सुहाई।' जो भी लेखनी से लिपित हुआ, लावण्य से भर गया।

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के आग्रही, विडम्बनाओं के विद्रोही, शैली के शिल्पी, परम्परा और प्रयोग के पोषक, संस्कृति के संवाहक, राजनीति और साहित्य के सम्मेलन, बौद्धिक चेतना के सूत्रधर, मानवमन के महान अध्येता, अतीत और वर्त्तमान के सेतु श्री रामवृक्ष बेनीपुरी अप्रतिम नाट्यशिल्पी के रूप में हिन्दी-साहित्य-संसार में सुप्रसिद्ध हैं।

बेनीपुरी ने सफल नाट्यकार के रूप में ख्याति इसलिए अर्जित की कि उन्होंने सामाजिक समस्याओं को आंतरिक संवेदनाओं से स्पर्शित किया और अपने स्पर्श का आधार विन्दु बनाया एक सजग कथा को, इतिहास के पन्नों में पाये गये नाम को, ढांचे को। इसी नाम को, इसी ढांचे को बेनीपुरी ने रूप दिया, मांस और त्वचा दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ ही, बेनीपुरी के पात्र सहजता और स्वाभाविकता से युक्त होने के कारण मन-प्राण पर छा जाते हैं। गो कि, इतिहास में सोये पात्रों को ही बेनीपुरी ने जगाया अपने नाटकों में, फिर भी वे सब वातावरण की गन्ध से इस तरह भरे हुए होते हैं कि उनसे साक्षात्कार की अनुभूति प्रत्यक्ष होती है।

बेनीपुरी के नाटक प्रसाद जी के नाटकों की दुरुह रंगमंचीयता से प्रभावित नहीं। सामान्य रंगमंच के अनुकूल होने के कारण बेनीपुर के नाटक जन-प्रियता प्राप्त करने में सक्षम हैं, अर्थात्, वे बेनीपुरी को लोक प्रसिद्धि प्रदान करने में सहायक है।

और, नाटकों की भाषा भी एक वजह है जिसके चलते बेनीपुरी जनप्रिय नाट्यकार बन सके। घर-आँगन के शब्दों का, मुहावरों को बेनीपुरी ने अपनी तरल-सरल भाषा में इस निखार से प्रयुक्त किया है कि भाषा की साहित्यिकता जनपदीयता के अल्हड़पन से मिश्रित होकर कण्ठहार बन गयी है। पात्र तो इतिहास के देश के हैं, किंतु उनकी बोली बेनीपुरी के मुँह की है। बेनीपुरी, जो हमारे समाज के एक प्रवक्ता हैं, हमारी संवेदनाओं के समीप हैं।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से बेनीपुरी, प्रसादजी के समीप हैं, यथार्थता की दृष्टि से प्रेमचंदजी के समान हैं, संवेदनशीलता की दृष्टि से यशपाल के निकट हैं, चित्रात्मकता की दृष्टि से महादेवी जी के समकक्ष हैं। आचार्य बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों—' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार कौन ? निस्संदेह, बेनीपुरी !"

संघमित्रा का कथानक

प्रियदर्शी अशोक एवं उनके परिवार से संबंधित कई नाटक तथा एकांकियाँ श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की लेखनी के प्रसादस्वरूप हिन्दी साहित्य को समर्पित हैं। इसी परम्परा में "संघमित्रा और सिंहल विजय" भी गुम्फित हैं। यों तो, बेनीपुरी ने पुस्तक की भूमिका में कुछ भी स्पष्ट नहीं किया है कि "संघमित्रा और सिंहल विजय" नाटक है या एकांकी, तथापि, चूँकि "संघमित्रा" और "सिंहल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विजय" पृथक-पृथक रचित हैं और उनकी रचना भी, न तो नाटक जैसी है, और नहीं एकांकी जैसी, इसलिए, उन्हें नाटक और एकांकी के बीच की चीज माना जा सकता है। अपने अध्ययन को जटिलता से मुक्त रखने के लिए सुविधा जनक यही है कि इन्हें लघुनाटिका ही कहा जाए।

सर्वप्रथम "संघमित्रा" नामक लघुनाटिका के कथानक करें।

"संघमित्रा" लघुनाटिका एक चरित्र-प्रधान कृति है, जिसका उद्देश्य है संघमित्रा के चरित्र को प्रभासित करना। प्रियदर्शी अशोक की पुत्री संघमित्रा ही इस लघुनाटिका की नायिका है। संघमित्रा को वेनीपुरी ने इस लघुनाटिका की अक्षरेखा बनाया है। चूंकि यह लघुनाटिका संघमित्रा के चरित्र को ही कथानक मानकर रची गयी है, इसलिए इसका नामकरण भी "संघमित्रा" समीचीन और उचित किया गया है। प्रमुख पात्र या पात्रों पर नाटकों के नामकरण की परम्परा नयी नहीं। प्रसादजी की 'ध्रुवस्वामिनी" भारतेन्दु की "नीलदेवी" कालिदास का "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" अथवा शेक्सपियर का "जूलियस सीजर" "हैमलेट" आदि इस प्रथा की पुष्टि के प्रमाण हैं।

यह लघुनाटिका सम्राट अशोक के राजप्रासाद के एक कक्ष में अपने कथानक का प्रारम्भ पाती है। राजप्रासाद के मणिकांचन संयोग वाले वातावरण और वैभवयुक्त जीवन का परित्याग कर सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है। संघमित्रा के साथ-साथ सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र भी बौद्ध भिक्षु का ताना-बाना ग्रहण कर लेते हैं। सम्राट के ठाट-बाट वाले जीवन का बौद्ध भिक्षु के जीवन में परिवर्त्तन, वस्तुतः, एक सशक्त कथानक का परिच्छेद्य बनने योग्य है। वेनीपुरी ने इसी परिवर्त्तन का प्रतिमांकन करने का सफल प्रयास किया है "संघमित्रा" नामक लघुनाटिका में।

कथा कलिंग-विजय के बाद युद्ध के अनुशीलन की चर्चा के साथ शुरु होती है। भाई-बहन, महेन्द्र और संघमित्रा वार्त्तालाप के क्रम में कलिंग-युद्ध की बीती यादों को कुरेद रहे हैं। महेन्द्र युद्ध का आँखों देखा हाल सुना रहे हैं और संघमित्रा वर्णन के ताप से बर्फ की तरह भीतर ही भीतर घुलती जा रही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महेन्द्र कलिंग-विजय के आनन्द से विभोर हैं, तो संघमित्रा युद्ध के इतिवृत्त से आहत। किंतु, महेन्द्र की भावनाओं में आमूल परिवर्तन भी है। तब के युद्ध की अनुभूतियों ने अब की भावनाओं को बौद्ध भिक्षु बना दिया है. महेन्द्र अहिंसा, दया, क्षमा, करुणा और सत्य के ˈचशील के प्रतिमान बन गये हैं।

कलिंग का एक योद्धा युद्ध में सम्राट अशोक को आहत स्थिति में मिला था। इस शत्रु कलिंगवासी की आहत स्थिति को देखकर युद्धप्रिय अशोक द्रवित हुए थे और बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। यह कलिंगवासी, नीलमणि अशोक के आध्यात्मिक जीवन का स्रष्टा, अशोक के साथ पाटलिपुत्र आया है। संघमित्रा नीलमणि के सम्पर्क में आती है। नीलमणि पाटलिपुत्र में बहने वाली गंगा के प्रति भी घृणा पालता हैं, क्योंकि वह कलिंग के प्रति अनुपम भक्ति से सिक्त है। पाटलिपुत्र कलिंग का विजेता है, इसलिए शत्रु के प्रति घृणा की भावना स्वाभाविक भी है। नीलमणि और संघमित्रा का परिचय गहराता जाता है इसलिए संघमित्रा को 'कलिंग कुमार' 'मित्रे' कह कर सम्बोधित भी कर देता हैं। 'तभी तो मित्रा ने अपना शरीर उन्हें समर्पित कर रखा है। संघमित्रा कहकर नीलमणि के प्रति आसक्ति की किस सीमा तक जा सकी है, इसका परिचय भी देती हैं।

पिता की आज्ञा से बौद्ध धर्म का प्रचार करने संघमित्रा और महेन्द्र सिंहल-द्वीप की यात्रा पर जाते हैं। मार्ग में कलिंग पड़ता है। कलिंग की तट भूमि पर संघमित्रा नीलमणि को देखती है तो पुलकित हो जाती है। बौद्ध भिक्षुणी के वेश में जलयात्रा करती हुई संघमित्रा नीलमणि को पाटलिपुत्र की छलना-भरी मूर्त्ति ही लगती है।

सिंहल द्वीप पहुँच कर संघमित्रा धर्म के दीपक जला रही है। प्रकाश की पावनता विकीर्ण हो रही है। उधर नीलमणि की प्रतिशोधी भावनाओं को बोधिलाभ हो गया है, इसलिए संघमित्रा के संघाराम में वह भी सिंहल द्वीप आ जाता है। अनुशय की अनुभूतियों से नीलमणि भिक्षु बन गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भिक्षु महेन्द्र 'धम्म' की ध्वजा फहराने सिंहल पहुँच जाते हैं। रक्त संबंधों की संकीर्ण सीमाओं को तोड़ समष्टि की अनन्तता अपने भावों में समाये महेन्द्र को विस्मय होता है नीलमणि को देखकर भिक्षु-वेष में। अनुशोचन का आलोड़न इतना तीव्र हो जाता है कि नीलमणि महेन्द्र और संघमित्रा से क्षमा-याचना भी कर देता है, क्योंकि अबतक अशोक की ये संतानें, पाटलिपुत्र की प्रतिमाएँ, उसे फरेबी और दुश्मन-सी लगती थीं। और क्षमा-याचना की इसी शुभ परिणति के साथ "संघमित्रा" लघुनाटिका समाप्त होती है। समाप्ति पर वाला नीलमणि का संवाद, संघमित्रा के सन्निध्य की स्नेहिल स्मृतियों का संकेत देकर, इस लघु नाटिका के कथानक की परिसमाप्ति भी संघमित्रा में ही कर देता है।

संघमित्रा की महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ

१. जब मृत्यु सामने होती है, आदमी भीषणतम संकल्प पर उतारू हो जाता है, मित्रे ! [महेन्द्र, १, पृ० १२]

२. पगली, मर्द डरा नहीं करते ! [महेन्द्र, १, पृ० १२]

३. रहने दीजिए; आप बिल्कुल कवि हैं; आप सत्य नहीं देख सकतीं ! [नीलमणि, २, पृ० १७]

४. झूठ वह है जो देखने या सुनने के प्रतिकूल कहा जाए। मैंने कहा सत्य आप देख नहीं सकतीं। सत्य का देखना कुछ आसान काम नहीं है राजकुमारी। [नीलमणि, २, पृ० १७]

५. सत्य को देखना कठिन है; तो उसका कहना कठिनतर। और राजकुमारी, उसका सुनना तो शायद कठिनतम ! [नीलमणि, २, पृ० १७]

६. सत्य ! नग्न सत्य ! जो पर्दे के पीछे है, वह कठोर सत्य ! [नीलमणि, २, पृ० १८]

७. शायद ही किसी नदी के तटपर इतना रक्त बहा हो। शायद ही किसी धारा में इतने आँसू मिले हों। गंगा !! गंगा !! तू दुनिया में किस अभिशाप का फल बनकर आयी ! [नीलमणि, २, पृ० १८]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. और, साम्राज्य न चले, जब तक उसमें ढोंग न हो। गंगा, ढोंग की मूर्त्ति! ऊपर उज्ज्वल चंचल लहरियों की अठखेलियाँ, नीचे रक्त का हाहाकार, आँसुओं की चीत्कार! [नीलमणि, २, १६]

९. जिसका घोंसला जला दिया गया हो, वह पंछी क्या शांत हो सकता है राजकुमारी। [नीलमणि, २, पृ० २०]

१०. पुत्री के समक्ष पिता की निन्दा भद्रोचित नहीं [संघमित्रा, २, पृ० २०]

११. अतीत का गीत दुहराने से कुछ नहीं होता कुमार! हम वर्त्तमान को देखें, भविष्य की चिंता न करें! [संघमित्रा, २, पृ० २१]

१२. क्या हर मतलब को प्रकट करने के लिए शब्द ही चाहिए ? [संघमित्रा, २, पृ० २१]

१३. खँडहर पर नई इमारत बन सकती है; पर खँडहर खुद इमारत नहीं बन सकता। जो उजड़ गया, उजड़ गया, जो नया आ गया, वह नया, आ गया। [नीलमणि, २, पृ० २१]

१४. विजेता और विजित की मनोदशा में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। दोनों विलकुल दो चीजें हैं। न तुमलोग हमें समझ सकोगे, न हम तुम्हें समझ सकेंगे। [नीलमणि २, पृ० २२]

१५. प्रेम और युद्ध एक ही सिक्के के दो रुख हैं—अलग रूप, किन्तु शरीर एक; अलग शब्द किन्तु अर्थ एक, बोल अलग, किन्तु मोल एक [संघमित्रा ३, पृ० २४]

१६. हाँ, पिता शरीर का दान करता है। पति का नैतिक अधिकार शरीर पर होता है, जिसका जो अधिकार है, मिलना ही चाहिए। [संघमित्रा, ३, पृ० २५]

१७. चोट खाया हुआ आदमी बीच में नहीं रुकता—वह छोर खोजता है छोर; और उसे पाकर ही दम लेता है। [संघमित्रा, ३, पृ० २७]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८. ''''बदला हुआ आदमी संसार को भी बदल देता है। हम संसार को बदल देंगे जिसमें न विजिता हो, न विजते; न युद्ध हो, न पराजय; न हिंसा हो; न घृणा! जहाँ व्यक्तित्व टुकड़ों में न बँटे, जहाँ हृदय खींचातानी में न पड़े! जहाँ मानव-आकांक्षा की परिणति हो ज्ञान में, मानव-कल्याण में।
[संघमित्रा, ४, पृ० ३०]

१९. हाँ, प्रकाश धीरे ही धीरे फैलता है नीलू। यह तो अंधकार है जो एक ही बार ढँक लेता है। [संघमित्रा ५, पृ० ३५]

'संघमित्रा' की महत्वपूर्ण पंक्तियाँ

अर्थ और व्याख्या

१. "जब मृत्यु सामने होती है...............उतारू हो जाता है, मित्रे!"

प्रस्तुत कथन 'संघमित्रा' लघुनाटिका के प्रथम दृश्य में महेन्द्र द्वारा कलिंग-युद्ध की चर्चा के क्रम में व्यक्त हुआ था। नाटककार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने महेन्द्र के माध्यम से मानव मनोविज्ञान का एक सत्य प्रस्तुत किया है, इन पंक्तियों में।

यह मानव-स्वभाव है कि जब परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती हुई विनाश के कगार पर ला देती हैं, तब सुरक्षा का प्रश्न मूर्धन्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में मरता क्या न करता वाली बात हो जाती है। इसी लोकोक्ति के भाव को महेन्द्र ने संघमित्रा से कलिंग की युद्धवाली मनोदशा का वर्णन करते हुए कहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन पंक्तियों में नाटककार के उन मनोभावोंका प्रकटीकरण हुआ हैं, जिनके अनुसार सुरक्षा का प्रश्न हिंसा और अहिंसा का विकल्प नहीं चाहता। जब संकट आच्छन्न हो जाए, तो सुरक्षा विकल्प की सम्भावनाएँ नहीं देखती। येनकेन प्रकारेण संकट से मुक्ति ही अभीष्ट हो जाता है। उसमें भी मृत्यु का प्रत्यक्षीकरण तो किसी भी कर्म में प्रवृत्त करा सकता है! यह सत्य है।

२. "पगली, मर्द डरा नहीं करते!"

इस सूत्र वाक्य में महेन्द्र ने अपनी बहन संघमित्रा को पुरुष-प्रकृति का परिचय दिया है। महेन्द्र अंतर से मुकुल-सा मृदुल हैं, तथापि अपने पौरुष के बोध से हीन नहीं।

जो कायर होता है, वह पलायन कर जाता है। जो वीर होता है, प्राप्त कर ही लेता है लक्ष्य। वीर और मर्द पर्याय हैं। मर्द वह है, जो पीठ न दिखावे। डर जाना कादर्य का परिचय देना है। इसलिए डरने वाला मर्द नहीं।

इस वाक्य में नाटककार महेन्द्र के माध्यम से पौरुष का गुण-गान करता है। वस्तुतः, बेनीपुरी की लेखनी फौलाद उगलने वाली है!

३. "कितना सुन्दर दृश्य! एक ओर..........................वह कुलकुल!"

ये पंक्तियाँ संघमित्रा की कही हैं 'संघमित्रा' लघुनाटिका के दूसरे दृश्य में। अपनी प्यारी गंगा मैया के पावन सौन्दर्य की ओर संकेत करती हुई संघमित्रा, अपने अन्तर की कवियित्री का परिचय देती हैं। वह भावनामयी है। सत्य और सुन्दर को परखने की क्षमता उसमें हैं। इन पंक्तियों से संघमित्रा की भावुक प्रकृति का ज्ञान होता है।

पाटलिपुत्र में प्रवाहित होने वाली गंगा की धारा दो अन्य दिशाओं से आती हुई शोणभद्र और सदानीरा की धाराओं से युक्त होकर त्रिवेणी बन जाती है। तीन धाराओं का एक होना. तीन लयों के एक में बँध जाने के समान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुतः, ऐसे संगम का गीत गा देना अस्वाभाविक नहीं। संघमित्रा संगम का संगीत बुनती है, 'वह कलकल, वह कुलकुल' कह कर।

संघमित्रा के इस कथन में भौगोलिक ज्ञान के अतिरिक्त भावप्रवणता भी परिलक्षित है। शोणभद्र नदी का पानी सोने का रंग वाला है, और इसमें शीतलता तरलायित नहीं। किंतु, इसके विपरीत, हिमालय से निष्पन्न सदानीरा की धारा रजत-धवल, हिमशीतल है। ये दो नदियाँ दो दिशाओं से आकर गंगा की धारा में मिलती हैं। शोणभद्र की धारा के प्रवाह से कलकल ध्वनि निकलती है, तो सदानीरा से कुलकुल स्वर सुनायी पड़ता है। यह वर्णन संघमित्रा के गंगाप्रेम का प्रकाशन हैं। किंतु, संघमित्रा का गंगा वर्णन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के गंगावर्णन के समान नहीं है। इसमें पद्य का प्रवाह तो नहीं गद्य की पद्यता अवश्य है। नदियों का मानवीकरण कर बेनीपुरी ने कथन को यथार्थता प्रदान की है।

४. "अस्ताचलगामी सूर्य ....शान से तैर रही हैं!"

प्रस्तुत उद्धरण में गंगा के एक दृश्य का वर्णन है। 'घमित्रा एक चित्रकर्त्री की भाँति दृश्य का शब्दचित्र प्रस्तुत करती है। रामवृक्ष बेनीपुरी को पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार कहा है। यहाँ बेनीपुरी की प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है।

साँझ का समय। सूर्य अस्त हो रहा है। डूबती हुई किरणों का परावर्त्तन हो रहा है पानी की सतह पर। किरणों का सुनहला रंग पानी को सोने के तवक से मढ़ देता है। इस सुनहली जलधार पर रंग-विरंगे पाल ताने सजी-सजायी नौकाएँ, मानों एक हँसते हुए पुष्पोद्यान में उतरी हुई तितलियाँ! कल्पना की कमनीयता इस चित्र में निखर गयी है। संघमित्रा के ये शब्द नीलमणि को यह कहने लिए कि 'रहने दीजिए, आप बिल्कुल कवि हैं....' बाध्य अवश्य करते हैं। वस्तुतः संघमित्रा भावुकता से भरी हुई एक सौन्दर्य-प्रिया नारी है। बेनीपुरी की गढ़ी हुई प्रतिमा—संघमित्रा!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. "झूठ वह है, जो देखने या..................काम नहीं है, राजकुमारी !"

जो स्वानुभूत हो, वह संशय से परे होता है। जो प्रत्यक्ष हो, वह सत्य है। चार्वाक का यही दर्शन है। नीलमणि 'संघमित्रा' के दूसरे दृश्य में यही दर्शन प्रतिपादित करने की चेष्टा करता है। और उसके तर्कों का एक दृष्टांत है, उसकी यह उक्ति। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपनी 'नींव की ईंट' शीर्षक गद्यरचना में सत्य की परिभाषा देते हुए यही निष्कर्ष निकाला है, जो यहाँ नीलमणि के माध्यम से व्यक्त है।

सत्य सदैव प्रत्यक्ष से प्रमाणित होता है। जो अप्रत्यक्ष हो, वह भले ही असत्य या झूठ हो सकता है। किन्तु दृष्टि में ठीक बैठने वाली और सुनने में सही लगने वाली बातें झूठ कैसे ? देखने या सुनने के प्रतिकूल जो हो, वही झूठ है। तथापि, सत्य का दर्शन एक साध्य है। प्रत्यक्ष के प्रमाणों के स्पष्ट होते हुए भी, दृष्टि का विरोधाभास सत्य को देखने में बाधक है। दृष्टि को विरोधाभास इसलिए होता है कि सत्य सर्वदा सुन्दर हो ही, यह अनिवार्य नहीं और सौन्दर्य ही आँखों को भाता है। इस द्वन्द का ही परिणाम है कि सत्य को देख पाना सर्वसम्भव नहीं। नीलमणि मनुष्य के स्वभाव का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए यह मंतव्य प्रकट करता है। युग-युग की साधना के बाद भी सत्य का दर्शन सम्भव नहीं हो पाता। बुद्ध को कितनी दीर्घ तपस्या के बाद सत्य दीखा ! सत्य भावना से नहीं दीखता, साधना से दीखता है।

इन पंक्तियों में बेनीपुरी यथार्थवादी मनोविज्ञान का तथ्य-निरूपण करते हैं। वे यथार्थ के शिल्पी हैं, मनोविज्ञान के अध्येता हैं।

६. "सत्य को देखना..................तो शायद कठिनतम !

सत्य सुन्दर हो ही, यह आवश्यक नहीं। जो सुन्दर नहीं, उसे दृष्टि ग्रहण करने में हिचकती है। अस्तु, सत्य को देखना कठिन है।

सत्य प्रिय हो ही, यह अनिवार्य नहीं। जो प्रिय नहीं, उसे शास्त्र मना करते हैं बोलने से। 'मा वद सत्यम् अप्रियम्।' यदि अप्रिय सत्य बोल दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता, तो, पीड़ा हो जाता है। और पीड़ित कर देना ठीक नहीं, इसलिए, सत्य का कहना कठिनतर है।

और जो सत्य देखने में आँखे कतरायें, वाणी व्यक्त नहीं करे, क्या उसे सुन पाना सरल है? सत्य सर्वदा सुखद हो, यह अपेक्षित नहीं। फिर कौन चाहे दुख? दुख चला आवे, तो सह्य है। किन्तु, ज्ञानवश इसे कोई नहीं चाहे। सत्य, सम्भव है, सुख नहीं दे! इसलिए इसे सुनना सबों को पसन्द नहीं। जो सत्य सुनकर, विचलित न हो, ऐसा दृष्टांत अत्यल्प होता है। यही कारण है कि सत्य का सुनना कठिनतम है।

नीलमणि की प्रस्तुत उक्ति में व्यंग से मिश्रित आक्रोश व्यक्त है। किंतु वास्तविकता भी है। यह ढंग बेनीपुरी की निजी विशेषता है।

७. "सत्य ! नग्न सत्य !..................बनकर आयी !"

प्रस्तुत संवाद में नीलमणि अपने उस आक्रोश को वाणी प्रदान करता है, जो पाटलिपुत्र और गंगा के प्रति उसके मन में है। संघमित्रा को अपने आक्रोश के भाव सुनाते हुए, वह गंगा की मर्यादा की भर्त्सना तो करता है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से गंगा की महिमा भी स्वीकारता है। भावों की यह संक्रांति नीलमणि को सत्य और प्रत्यक्ष के अंतर्द्वन्द्व से भर देती है।

गंगा को 'साम्राज्यलिप्सा की प्रतीक' मानकर नीलमणि संघमित्रा के उस सत्य को झूठ साबित करना चाहता है, जो गंगा के प्रति अपने भावों में वह पालती है। गंगा पवित्रता की धारिणी है, यह संघमित्रा का सत्य है। किन्तु, नीलमणि इसे पर्दे के बाहर का सावरण सत्य मानता है, जो वस्तुतः नहीं है। 'पर्दे के पीछे' यह गंगा नीलमणि को 'साम्राज्यलिप्सा की प्रतीक' लगती है।

तथापि, नीलमणि यह तो स्वीकरता ही है कि गंगा ने ही पाटलिपुत्र-वासियों को विकासशील होने की प्रेरणा दी है। स्वयं गंगा जिस प्रकार दुर्गम पथों को पार कर, अपनी राह बनाती, उत्तरोत्तर आगे बढ़ती आयी है, उसी प्रकार पाटलिपुत्रवासियों को इसने 'सीमाओं को तोड़ने, रास्ते की रुकावटों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को उखाड़ फेंकने, साहस करने वालों को डुबोने और चारों ओर एकछत्र राज्य स्थापित करने की प्रेरणा' दी है। नीलमणि परोक्षतः पाटलिपुत्रवासियों के गुणों की सराहना भी करता है; उनके अदम्य साहस, अपरिमेय उत्साह और अनुपम गतिशीलता की सराहना।

किंतु, नीलमणि अपने क्षोभों से इतना आक्रांत है कि गंगा को रक्त और आँसू से ही भरा देखता है। यह क्षोभ लांछना और आक्रोश दोनों के मिले-जुले स्वर में प्रस्फुटित कर नीलमणि अपनी भावनात्मक संक्रांति की अभिव्यक्ति करता है। पाटलिपुत्र विजय का नगर है। विजय जो युद्ध से प्राप्त हुई है। युद्ध में रक्तपात एक अनिवार्यता है। अस्तु, पाटलिपुत्र रक्तपात से पखारा हुआ है। पाटलिपुत्र की इस युद्धप्रियता को गंगा का वरदान मान लेने के कारण, नीलमणि गंगा के तट पर ही, युद्ध से बहाये गये रक्त और आँसू को देखता है। और तट को बार-बार छूने वाली गंगा की लहरों को वह रक्त आँसू से सनी हुई पाता है। यह गंगा न होती, तो पाटलीपुत्र को युद्ध में विजय प्राप्त करने की शक्ति न होती, और तब पाटलिपुत्र कलिंग के भाग्य का विधाता न बनता। चूँकि पाटलिपुत्र के कारण ही कलिंग को अपना विनाश देखना पड़ा, इसलिए वह पाटलिपुत्र को पुलकित और प्रेरित करने वाली गंगा को अभिशाप मानता है।

यह पूर्ण संवाद नीलमणि की आक्रोशभरी व्यथा की व्यंजना है।

८. और, साम्राज्य न चले "......................... रक्त.....रक्त....."

उद्धृत संवाद में नीलमणि राजनीति के तथ्यों की ओर संकेत करते हुए यह कहता है कि राजतंत्र में ढोंग और छलावा अनैतिक नहीं। साम्राज्य का शासन साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति पर चलता है। इन नीतियों में ही ढोंग, छलावा आदि सम्मिलित हैं। चूँकि नीलमणि गंगा को 'साम्राज्यलिप्सा की प्रतीक' मानता है, इसलिए वह गंगा को 'ढोंग की मूर्त्ति' कह कर संबोधित करता है। ढोंग—ऊपर कुछ भीतर कुछ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टि-बोध भावनाओं की स्थितियों पर निर्भर करता है। तुलसी ने कहा भी है—"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी।" नीलमणि की भावना में प्रतिहिंसा है, इसलिए उसे गंगा की 'उज्ज्वल चंचल लहरियों की अठखेलियों के नीचे रक्त का हाहाकार' सुनायी पड़ता है, 'आँसुओं की चीत्कार' सुनायी पड़ती है। पाटलिपुत्र ही उसे ढोंगी लगता है, स्वाभाविक भी है, तो क्यों न उसे 'गंगा ढोंग की मूर्ति' लगे।

सायंकाल की लालिमा जो जल की सतह से परावर्तित होती है, उसे देखकर नीलमणि अट्टहास में डूब जाता है और बोल उठता है संघमित्रा से—"सूरज की अंतिम किरणों ने लहरियों पर पड़कर तुम्हारी गंगा का सारा ढोंग खत्म कर दिया।" रक्त लाल होता है। साँझ की गंगा भी लाल दीखती है, आसमान के लाल हो जाने के कारण। यह साँझ की लालिमा जब गंगा की लहरियों पर तैरती है, तो नीलमणि उसे रक्त की धारा मानता है। प्रतिहिंसातुर नीलमणि रक्त नहीं देखे तो क्या? बेनीपुर ने उसकी मनःस्थितियों को जिन शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया है, उससे स्मरण हो आता है सेक्सपियर का किंग लियर। 'किंग लियर' नाटक के आँधी वाले दृश्य में किंग लियर भी नीलमणि की तरह ही क्षोभजनित व्यंग्य और आक्रोश भरे वाक्यों को बोलता है। विक्षिप्त मनःस्थितियों की मार्मिक अभिव्यंजना ही यह संवाद है।

९. "जिसका घोंसला जला ....क्या शांत हो सकता है?"

इस वाक्य में नीलमणि उस मन की व्यथा व्यक्त करता है, जिसके सारे सपने टूट गये हों। रूपकों की भाषा में अपनी वेदना को वाणी प्रदान कर नीलमणि अपनी जलन को प्रकट करता है।

अपने कलिंग को नीलमणि एक घोंसला मानता है, जिसका वह विहग है। कलिंग उजड़ गया, नीलमणि का घोंसला जल गया। निराश्रम की स्थिति वस्तुतः बड़ी कष्टदायिनी होती है। ऐसे में शांति, सुख, संतोष सब कुछ लुट जाता है। और, तब संघर्ष और विरोध का स्वर मुखर हो जाता है। नीलमणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी स्वर को मुखरित करता हुआ संघमित्रा से अपनी उद्विग्नता का कारण स्पष्ट करता है। उसे जहर पीना पड़ा है तो लहर वह सम्हाले कैसे ?

बेनीपुरी की भाषा में सहजता विलक्षण है !

१०. "अतीत का गीत दुहराने"... ....भविष्य की चिंता करे !"

प्रस्तुत शब्दों में संघमित्रा कवि लौंगफेलों की पंक्तियों

Trust no future, how'er pleasant
Let the dead past bury its dead
Act, act in the living present........

को भावानुवादित करती है। सार्त्र और अन्य अस्तित्ववादियों ने वर्त्तमान के दर्शन को ही माना है। यहाँ नीलमणि को सांत्वना देती हुई संघमित्रा वर्त्तमान के महत्त्व को प्रतिपादित कर रही है।

जो बीत गया, सो बीत गया। वह फिर लौट कर नहीं आएगा। अतः उसको दुहराते रहने से कोई लाभ नहीं। मात्र अतीत के गीत गाने से कुछ नहीं होता। वस्तुतः, वर्त्तमान, जो प्रत्यक्ष है, इसीके बनाने-बिगाड़ने से भला या बुरा होता है। वर्त्तमान को नियंत्रित करना ही व्यक्ति के वश की बात है। भविष्य जो अनागत है, अनिश्चित है, उसके प्रति चिंता भी व्यर्थ है। जो आएगा, वह आएगा। जब वह आएगा, तो देखा जाएगा। किंतु, जो आया है; उसके प्रति विमुख होना तर्कसंगत नहीं। वर्त्तमान को उपेक्षित करना, भविष्य को अंधकारमय कर देना है। यदि वर्त्तमान की नींव कमजोर होती है तो भविष्य की इमारत कभी भी मजबूत नहीं होती। इसलिए, भविष्य के निर्माण के लिए वर्त्तमान को बनाना आवश्यक है, मात्र अतीत को दुहराते रहने से कुछ बनने का नहीं।

संघमित्रा की इस उक्ति के माध्यम से बेनीपुरी अपने वर्त्तमान-दर्शन को उपस्थापित करते हैं।

११. "क्या हर मतलब को प्रकट करने के शब्द ही चाहिए।"

अभिव्यक्ति बोलकर, लिखकर या संकेत के द्वारा, किसी भी रीति से की जा सकती है। यह अनिवार्य नहीं, कि प्रत्येक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये तीनों पद्धतियां अनुकूल हो हीं। कभी-कभी आँखों के नीरव शब्दों में ही अर्थ की अनन्तता सिमट जाती है; संकेतों की एक भंगिमा में ही अभिप्राय का विस्तार समा जाता है। बोलना सर्वदा अनिवार्य ही नहीं, शब्द सर्वदा उपयुक्त ही नहीं होते।

सामान्य स्थितियों में, तो शब्दों का माध्यम सम्भव और समीचीन हो भी सकता है, किंतु प्रेमासक्ति की अभिव्यक्ति के लिए भंगिमाओं की भाषा से बढ़-कर दूसरा कोई साधन नहीं। तात्पर्य यह कि जहां वैयक्तिक अभिव्यक्ति का प्रश्न होता है, वहाँ 'हर मतलब को प्रकट करने के लिए शब्द' आवश्यकतः नहीं चाहिए। संकोच और शील शब्दों को फूटने से रोक देते हैं। Speech is silver, Silence is gold एक कहावत है। संघमित्रा इस कथन में विश्वास करने वाली है। अस्तु, नीलमणि को अपने आंतरिक भावों को दर्शाने के लिए, वह शब्दों की अनुपयुक्तता प्रमाणित करती है। संघमित्रा बहुत तर्कशीला है।

१२. "खँडहर पर नई इमारत..............वह नया आ गया!"

यह सृष्टि का नियम है कि वस्तु का रूपांतरण होता है एक निश्चित अवधि के बाद। सृजन की पृष्ठभूमि में विनाश होता है। बिना पुराने के गये, नया नहीं आता। किंतु, यह बात भी नहीं कि पुराने की जगह आये हुए नये में पुराना झांके ही। आवागमन अथवा सृजन-विनाश की इस शाश्वत प्रक्रिया की ओर ही नीलमणि संकेत करता है संघमित्रा को।

खँडहर जो, अवशेष हो गया है, एक नूतन निर्माण का आधेय बन सकता है, यह एक सम्भावना है, किंतु, वह स्वयं नूतन निर्माण में निरुपित हो जाए, यह कल्पना ही निराधार है। जो अवशेष हो गया, वह शेष ही होगा, फिर से पूर्ण नहीं। इसी प्रकार, जो नया आ गया, आ गया। हाँ यह सत्य है कि यह आया हुआ 'नया' पल-पल व्यतीत में पुराना पड़ता जाता है। किंतु, जब तक वह है, है। इसके बाद ही, इसकी जगह फिर दूसरा आता है। नीलमणि की सूत्रोक्त सामान्यता के अवधान में रखकर ही व्यक्त हुई है, किंतु हेतु है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलिंग ही। यही कला का विस्तार है—व्यष्टिनिष्ठ से समष्टिनिष्ठ जब अभिव्यक्ति का स्वर हो जाता है, तो उसकी व्यापकता परिवर्द्धित हो जाती है।

१३. "विजेता और विजित..............मिल नहीं सकते !"

विजय और पराजय, विजेता और विजित परस्पर विपरीतार्थक शब्द हैं। दोनों के अर्थ की प्रतिकूलता का कारण पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है।

जो जीत जाता है, उसका उत्साह आसमान छूता है; जो हार जाता है, उसकी हिम्मत मिट्टी हो जाती है। एक ऊपर उठ जाता है, दूसरा नीचे गिर जाता है। कलिंग पर पाटलिपुत्र ने विजय प्राप्त की। अस्तु, स्वभावतः पाटलिपुत्र की जनचेतना में उत्साह और प्रसन्नता होनी चाहिए। विपरीततः, कलिंग पराजित है। इसलिए इसके निवासियों में लघुता और हीनता का भाव होना स्वाभाविक है। मानसिक समानांतरण के कारण इन दोनों का मिलन यथार्थ के धरातल पर तो सम्भव नहीं। ठोस ज्यामिति के अनुसार दो समानांतर रेखाएँ भी मिलती हैं—अनंत के विन्दु पर। नीलमणि अपने को और संघमित्रा को समतलीय ज्मामिति की दो समानांतर रेखाएँ मानता है, जो मिल नहीं सकतीं।

इस कथन में वेनोपुरी ने युद्ध-मनोविज्ञान के तथ्यों का प्रकाशन किया है।

१४. "ओह, इससे तो हमारा............मर्यादा नहीं तोड़ता !"

समुद्र का पानी खारा होता है। वैज्ञानिक चाहे जो कारण इसके लिए बताते हों, किसी वियोगी प्रेमी को समुद्र का पानी उसकी आँखों के आँसू से भर जाने के कारण, खारा हुआ लगता है। यह एक भावनात्मक दृष्टिकोण है। नीलमणि अपने कलिंग के किनारे बहने वाले समुद्र को, जो खारे पानी से भरा हुआ रहता है, ज्यादा प्यार करता है पाटलिपुत्र की प्यारी गंगा मैया से भी, जिसकी उज्ज्वल जलधार में माधुर्य और पावनता है। प्रेम की इसी भावना से नीलमणि कलिंग के समुद्र को खारा मानता हैं। नीलमणि समुद्र को कलिंग का प्रतीक मानकर, उसे महिमामंडित करने का प्रयास करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समुद्र का रंग और स्वाद सर्वविदित होता है। कोई भी गोपनीयता नहीं रहती। सागर को शिवत्व का पर्याय मानते हुए नीलमणि यह कहता है कि जिस प्रकार शंकरजी ने संसार के कल्याणार्थ विष पी लिया, यह सागर भी संसार भर के आँसू पीकर खारा हो गया है। वस्तुतः, ऐसी कोई बात नहीं होती। किंतु, भावुकता के प्रवाह में इस प्रकार की उक्तियाँ सहज सम्भव हैं। समुद्र अचलता का प्रतिमान है, गाम्भीर्य का उदाहरण है तथा मर्यादा का मानदण्ड है। इसकी अचलता, गम्भीरता तथा मर्यादा इसके विस्तार और अतलता के कारण हैं।

इन पंक्तियों में नीलमणि समुद्र की भौगोलिक परिभाषा को भावात्मक भाषा में व्यक्त करता है।

१५. "प्रेम और युद्ध एक ही ... ...एक।"

There is nothing unfair in war and love. एक प्रसिद्ध उक्ति है अंग्रेजी की। युद्ध और प्रेम में सब कुछ सम्भव है; भला भी, बुरा भी। ऐसा क्यों? क्योंकि तत्त्वतः दोनों एक हैं। इसीलिए संघमित्रा ने अपनी परिचारिका मल्लिका को समझाते हुए प्रेम और युद्ध की समानता सिद्ध की है।

प्रेम आत्मा पर विजय को लक्षित होता है, युद्ध सीमा और सम्पत्ति पर विजय को। दोनों ही स्थापित होने की रीतियाँ हैं। एक का माध्यम है जोड़, तो दूसरे का है घटाव। लेकिन, परिणाम दोनों का एक ही होता। इसीलिए संघमित्रा प्रेम और युद्ध को 'एक ही सिक्के के दो रुख' मानती हैं, जिनके 'अलग रूप, किन्तु शरीर एक; अलग शब्द, किन्तु अर्थ एक; बोल अलग, किन्तु मोल एक।' प्रेम भी अंधा होता है, युद्ध भी अंधा।

१६. "हाँ, पिता शरीर का दान .... उसे मिलना चाहिए!"

इन शब्दों में संघमित्रा के हृदय की वे विद्रोही भावनाएं प्रकट हुई हैं, जो विवाह की रुढ़िवादी परम्परा के कारण उसे कुरेदती रही हैं। विवाह जीवन भर के सम्बन्ध की स्थापना का कार्य है। इसके लिए स्वतन्त्रेच्छा को प्रधानता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलनी चाहिए, जिससे अपनी साधों और संकल्पों के अनुरूप संगी चुनने की सुविधा मिल सके। किंतु, तत्कालीन हिन्दू परम्परा में इस स्वतन्त्रेच्छा का महत्त्व नहीं। संघमित्रा प्रगतिशील स्वभाव की नारी है, अतः, वह परम्पराओं का विद्रोह कर बैठती है।

प्रथा के अनुसार पुत्री का परिणाम पिता अपनी पसन्द के अनुसार सम्पादित करता है। पुत्री की इच्छाओं और मान्यताओं को वर के चयन के क्रम में कोई प्राथमिकता नहीं मिलती। जो पिता की दृष्टि में जँचा, उसे पुत्री का पति बना दिया। ऐसे में यदि पति-पत्नी में वैचारिक और भावनात्मक एकता नहीं हो पाती, तो सम्बन्ध कटु हो जाता है, जीवन मरुस्थल हो जाता है। अग्निवर्मा एक ऐसा ही पति है जिसे संघमित्रा पर उसके पिता ने थोंप दिया है। संघमित्रा की साधें कुछ और थीं, सम्भवतः, इसीलिए अनिवार्यताओं के चलते वह तन से तो पत्नी बन गयी, किन्तु मन से नहीं बन सकी। परिणय-संस्कार की रीतियों के अनुसार पति को पत्नी का स्वामी बनाया जाता है। और, पत्नी को एक सम्पत्ति के रूप में पति के हाथों सौंपा जाता है। इस कारण, पति को पत्नी के शरीर पर नैतिक अधिकार प्राप्त हो जाता है। चूँकि संघमित्रा स्वेच्छा से अग्निवर्मा को पति के रूप में वरण नहीं कर पायी, इसलिए वह विद्रोह की भावनाओं से भर जाती है, और अपने अंतर का आवेग उड़ेल देती है मल्लिका से वार्त्तालाप के क्रम में। वेनीपुरी प्रगतिशील भावनाओं के कलाकार हैं और उनकी प्रगतिशीलता संघमित्रा के कथन में प्रकटी है।

१७. "चोट खाया हुआ आदमी ....दम लेता है।"

संघमित्रा के ये शब्द उस सत्य को उद्भासित करते हैं, जो 'मरता, क्या न करता' का दर्शन है। वस्तुतः, जिसकी भावनाओं को आघात पहुँचता है, वह अपनी आहत भावनाओं के परितोष के लिए कोई भी संकल्प पर उतारू हो जा सकता है। संकल्प की सिद्धि में सही और गलत् का विवेक शून्य हो जाता है। ऐसे में मात्र एक ही ध्येय सम्मुख होता है, दर्द की दवा पाना, चोट का मलहम ढूँढ़ना और, इस ध्येय की प्राप्ति किये बिना चैन नहीं, शांति नहीं, विश्राम नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मँझधार में उलझ गये व्यक्ति को किनारा चाहिए, चाहे डूबकर या उतरा कर, जैसे भी। जब तक किनारा न मिले, दम नहीं मिलता। उद्विग्नता की स्थिति में धैर्य कहाँ? घायल जो होता है, उसे प्रहार का बदला चाहिए, मर कर या मारकर। यही मनोविज्ञान है।

१८. "आदमी बदलता भी है नीलू?"

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो निरपेक्षता की स्थिति सर्वदा स्वीकार किये नहीं रह सकता। कभी सुख, कभी दुःख; कभी धूप, कभी छाँह; कभी मिलन, कभी विरह; यही जीवन है। यदि ये परिवर्त्तन न हों, तो जीवन नीरस हो जाए, शुष्क हो जाए!

परिवर्त्तनों के प्रभाव के परिणामस्वरूप मनुष्य की मानसिक और शारीरिक स्थितियाँ निर्धारित होती हैं। प्रभाव जैसा, परिवर्त्तन तैसा। जीवन एक ही लीक पर चलने का अभ्यासी नहीं होता। घटनाओं का विन्यास व्यक्तित्व में विशेषताएँ ला देता है। इस कारण व्यक्ति के स्वभाव में तदनुरूप विसंगतियाँ या असंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यदि ऐसा न होता, तो घोर आततायी अँगुलीमाल भिक्षु न बनता; रक्त के पिपासु अशोक, प्रियदर्शी न बनते! संघमित्रा व्यक्ति को एक परिवर्त्तनशील प्राणी मानती है। नीलमणि की भ्रांतियों के निवारण के लिए, वह इस स्वाभाविक प्रक्रिया का विवेचन करती है। आदमी बदलता भी है, यह सत्य है।

१९. "हम संसार को बदल देंगे ···· ···· मानव-कल्याण में।

संघमित्रा की यह उद्घोषणा उसके सिंहल-प्रयाण के अभीष्ट को व्याख्यायित करती है। बौद्धधर्म की संस्थापना के लिए संघमित्रा सिंहल द्वीप जाती है। सिंहल में बौद्धधर्म का प्रकाश फैलेगा, और तब सिंहल का संसार एक नये संसार में सँवर जाएगा।

इस कथन से यह विदित होता है कि बौद्ध देशों के राज्य में विजय और पराजय का नाम भी नहीं रहता, हिंसा और घृणा का अस्तित्व नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बौद्ध धर्म व्यक्ति-व्यक्ति के बीच स्नेह-सौहार्द्र से सिक्त संबंध स्थापित करता है। इसकी शुभ्रता से व्यक्ति का संघटन होता है, विघटन नहीं। विघटन की सम्भावनाएँ हृदय को खींचातानी में निहित होती हैं। और, यह खींचातानी बौद्ध धर्म की स्निग्धता में समाप्त हो जाती है। व्यक्ति खंडित नहीं होता। ऐसे में, व्यक्ति का उद्देश्य होता है बोधिलाभ, समष्टि का कल्याण। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय बौद्ध धर्म की भावना प्रयासित होती है। ज्ञान और कल्याण ये ही धर्म के लक्ष्य-संधान हैं।

संघमित्रा बौद्ध भिक्षुणी बन चुकी है, अतः अपने धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से, बौद्ध धर्म को योजना और अन्विति का परिचय देती है इन शब्दों के माध्यम से।

२०. "हाँ, प्रकाश धीरे ही धीरे ....एक बार ढँक लेता है।"

भौतिक विज्ञान का यह सिद्धांत है कि प्रकाश पर अंधकार का आच्छादन सहज सम्भव है। मनोविज्ञान की यह मान्यता है कि सद्गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों का प्रभाव व्यक्ति शीघ्र ग्रहण करता है। संघमित्रा भौतिक विज्ञान एवं मनोविज्ञान के इसी सत्य को सूत्र रूप में नीलमणि को बताती है।

कुछ क्षण के लिए प्रकाश अंधकार से भले ही पराजित दीखे, किंतु, अंधकार का अस्तित्व स्थाई नहीं। प्रकाश सत्य होता है, इसलिए 'सत्यमेव जयते' के सिद्धांतानुसार प्रकाश विजयी होता ही है। भले ही, प्रकाश को प्रस्फुटित होने में कठिनाइयाँ रोकें कुछ समय के लिए। किंतु, धीरे ही धीरे प्रकाश फैलता है अवश्य।

प्रकाश—ज्ञान का दृष्टि का; व्यष्टि का, समष्टि का। "बाइबिल" की 'बुक ऑफ् जेनेसिस' मे "Let there be light and there was light" लिखा है। यह light संघमित्रा की प्रकाश है। सृष्टि का तम समाप्त हो, तो सृष्टि का स्वरूप निखर जाए, यह कामना थी भगवान की। इसलिए प्रकाश की कामना की गयी। यह प्रकाश फैला, धीरे-ही-धीरे। सत् की विजय असत् पर, सृजन की विजय विनाश पर, ज्ञान की विजय अज्ञान पर निश्चित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है। विजय की यह सिद्धि एक साध्य प्रतिक्रिया है और सृष्ट का स्वरूप बड़ा सुकुमार। सम्भव है, सत्य की सुकुमारता असत्य के कुठाराघात से विच्छिन्न हो जाए। अंधकार वह असत्य का वर्ण है जो सत्य के शुभ्र स्वरूप को क्षण में ही आच्छादित कर अपनी तामसी विजय स्थापित कर लेता है। किन्तु, यह विजय शाश्वत नहीं, चिंतन नहीं। प्रकाश जब विकीर्ण हो जाता है, तो अंधेरा विदीर्ण हो ही जाता है। प्रकाश धीरे-धीरे फैलता है। संघमित्रा नीलमणि को प्रभावित करने के उद्देश्य से धर्म के प्रभाव का परिचय प्रस्तुत करती है। धर्म का प्रकाश बड़ा पावन होता है, किंतु सहज ही प्रस्फुट्य नहीं। ज्योति की ऋचाएँ अम्बर गाता है; किन्तु जब तक अंधकार रोके रहता है, अम्बर चुप रहता है।

संघमित्रा की समीक्षा

बौद्ध साहित्य त्रिपिटक के पृष्ठों में सुरक्षित रहकर जातक कथाओं द्वारा लोकख्यात हुआ, तो दूसरी ओर कई नाट्यकृतियों, उपन्यासों एवं रचनाओं का आधेय बनकर साहित्य का एक पृथक अध्याय भी बना। जिस प्रकार हिन्दी काव्य-वाङ्मय में राम-काव्य, कृष्ण-काव्य, शैव काव्य समादृत और अध्येय हैं, उसी प्रकार स्वतन्त्र अध्ययन-अनुशीलन के लिए बौद्ध-साहित्य भी अपेक्षा रखता है। इसी अपेक्षा की अभीष्ट-सिद्धि रामवृक्ष बेनीपुरी ने तथागत, अम्बपाली, विजेता, नेत्रदान, संघमित्रा और सिंहल विजय जैसी नाट्यकृतियों की रचना कर की है।

'संघमित्रा' और 'सिंहल विजय' ऐसी लघु नाटिकाएँ हैं, जिनके माध्यम से बेनीपुरी जी ने भगवान बुद्ध द्वारा संस्थापित धर्म की पावनी भावनाओं का अभिव्यंजन किया है। यों कहें, 'संघमित्रा' लघुनाटिका की विषयवस्तु बौद्धधर्म के इतिहास में पारिभाषित एक संज्ञा संघमित्रा पर आधारित है। नाट्यकार के शब्दों में—"इतिहास ने हमें सिर्फ नाम दिया है, ढाँचा दिया है, मैंने उसे रूप देने की चेष्टा की है, उसमें मांस और त्वचा देने का प्रयत्न किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक किरण पकड़कर जैसे कोई मंजिल तक पहुँच जाए, वैसे ही एक संज्ञा पाकर विशेषणों और क्रियाओं का कार्वनिक संयोजन बेनीपुरी ने 'संघमित्रा' लघुनाटिका में कर दिया है। संकेत को कल्पना ने विस्तृत कर रचना में ढाल दिया। 'संघमित्रा' लघुनाटिका की कथावस्तु इतिहास-सम्मत हो, न हो; कला-सम्मत तो है ही, क्योंकि कथा जिस कलेवर में कही गयी है, उसमें सहजता और स्वाभाविकता का समावेश सौन्दर्य के साथ हुआ है। 'संघमित्रा' ऐतिहासिक नाटचकृतियों के मध्य सफलता के साथ अँट बैठती है, ऐसा कहा जा सकता है।

यों तो कथानक की दृष्टि से 'संघमित्रा' न तो प्रसाद जी की 'ध्रुवस्वामिनी' की तरह या न बेनीपुरी की ही 'अम्बपाली' की तरह एक व्यापक चित्रपट (vast convass) पर आधारित है, फिर भी, जिस उद्देश्य से यह लघुनाटिका रचित है, वह उद्देश्य निश्चित रूप से सिद्ध हुआ है इसमें 'संघमित्रा' लघुनाटिका "नारी रूप को प्रतिफलित करती है।"

सम्राट अशोक की पुत्री और महेन्द्र की छोटी बहन संघमित्रा के चरित्र को प्रभासित करना ही नाटककार बेनीपुरी का अभीष्ट है। इस प्रकार यह लघुनाटिका एक चरित्र प्रधान कृति है। संघमित्रा के चरित्र को व्याख्यायित करने के लिए बेनीपुरी ने जिन अन्य तीन पात्रों की रचना की है, वे सब नाटक के वृत्त की वैसी त्रिज्यायों के समान हैं, जिनका केन्द्र है संघमित्रा। प्रत्येक पात्र के चरित्र का सम्बन्ध संघमित्रा से जुड़ा हुआ है। नीलमणि, सम्भव है, एक काल्पनिक पात्र ही हो, तथापि प्रसादजी की मालविका या बेनीपुरी की ही चन्द्रा जैसी मात्र कल्पना की सृष्टि वह नहीं है। इस लघुनाटिका की प्रत्येक घटना नदी की उन लहरियों की तरह है जो तट से टकराकर ही विलीन हो जाती हैं। संघमित्रा वही तट है—नाटक की कथा नदी का तट।

संघमित्रा नवनीत-सा हृदय वाली नारी है जिसके लिए युद्ध एक जान-लेवा शब्द है। बार-बार 'उफ्', 'ओह-ओह', 'ओहो' कहने वाली युद्ध की चर्चा मात्र से ही, शांतिप्रिया संघमित्रा प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति है अम्बपाली की तरह प्रेम में पगी तो वह है, किन्तु, प्रेम का जहर पीकर। लहर में उफनने वाली नहीं। नीलमणि के प्रति एक अव्यक्त आसक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पालकर वह मात्र इतना ही भर कह पाती है—'क्या हर मतलब को प्रकट करने के लिए शब्द ही चाहिए ?' भंगिमाओं की आड़ी-तिरछी भाषा में बोलने वाली संघमित्रा भावनाओं की धनी हैं। तभी तो नीलमणि ने उससे कहा—'रहने दीजिए; आप बिल्कुल कवि हैं; आप सत्य नहीं देख सकतीं !' किन्तु, संघमित्रा को अपने सत्य की अनुभूति में अविश्वास नहीं, इसलिए आत्मबोध को अभिव्यक्त करते हुए उसने कह ही दिया—सत्य नहीं देख सकती ! तो क्या मैं झूठ कह रही हूँ ?' संघमित्रा का चरित्र गतिमय है। वह परम्पराओं की पोषिका है, तो प्रयोग की प्रशंसिका भी। मल्लिका से वार्त्तालाप में संघमित्रा अपनी प्रगतिशीलता को वाणी प्रदान करती है—हाँ, पिता शरीर का दान करता है। पति का नैतिक अधिकार शरीर पर होता है, जिसका जो अधिकार है, उसे मिलना ही चाहिए, मल्लिके !' एक स्वप्न को निवेदिता संघमित्रा सुमन जैसे नन्हें मुन्ने की माँ भी है, जिसके आँचल तले दूध है और आँखों में पानी। वह अग्निवर्मा की पत्नी तो अवश्य है, किन्तु उसने मात्र 'अपना शरीर उन्हें पूर्णतः समर्पित कर रखा है' हृदय नहीं। पिता की आज्ञा से तन और मन की कड़ी परीक्षा में सम्मिलित हो चुकने के बाद वह 'इससे भी बड़ी साधना की कसौटी' पर परखी जाने के लिए अपने को प्रस्तुत कर देती है।

और, संघमित्रा सिंहलद्वीप के लिए धर्म संस्थापनार्थ प्रयाण करती है इस घोषणा के साथ कि "हम बदल गये हैं, हम संसार को बदलने चले हैं। हम संसार को बदल देंगे, उसे ऐसा बना देंगे जिसमें न विजेता हो, न विजित; न युद्ध हो, न पराजय; न हिंसा हो, न घृणा। जहाँ व्यक्तित्व टुकड़ों में न बँटे, जहाँ हृदय खींचातानी में न पड़े। जहाँ मानव-आकांक्षा की परिणति हो ज्ञान में, मानव-कल्याण में।" सिंहल पहुँच कर धर्मदूता संघमित्रा बोधि-शिखा को सींच-सींच कर बोधिवृक्ष बना देती।

महेन्द्र और नीलमणि तथा मल्लिका की रचना बेनीपुरी ने कथानक में स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करने के लिए नहीं की, अपितु संघमित्रा के चरित्र-विकास में सहायक बनने के लिए ही की। सभी पात्र एक दूसरे के पूरक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, प्रावेष्टन के अनुरूप हैं। इन पात्रों के कथनोपकथन को बेनीपुरी ने अपने स्वरों और प्रयोगों का पर्याप्त अवलम्बन प्रदान किया है, जिस कारण पात्रों के संवाद सशक्त, सरस, सतर्क और सहज हैं। हाँ, सबों के संवादों का स्वर एक है, स्तर एक है, मानों सबों की वाणी में बसे हुए हों बेनीपुरी। सचमुच, इतिहास ने बेनीपुरी को एक ढाँचा भर जरूर दिया, मांस और त्वचा दिया बेनीपुरी ने।

पाँच दृश्यों में पूर्ण यह लघुनाटिका पाटलिपुत्र से लेकर सिंहलद्वीप तक के विस्तार में फैली हुई है। कथानक को अग्रसर कराने वाली गति सर्वत्र विद्यमान है, कहीं लचड़ने की कोई खरोच नहीं दीखती। उत्सुकता और अभिरुचि का प्राधान्य इस लघुनाटिका को सफलता के उत्कर्ष पर पहुँचा देता है। पात्रों के कथानक विकसित होता है—कलिंग युद्ध के बाद युद्ध-प्रिय अशोक शान्तिप्रिय अशोक बन जाते हैं और बौद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त अपनी पुत्री संघमित्रा और पुत्र महेन्द्र को सिंहलद्वीप भेज देते हैं। सभी संवाद कथानक को भले ही मोड़ न देते हों, किन्तु कथा का संकेत अन्य संवादों से अवश्य मिलता है। कलिंग-युद्ध का वर्णन, कलिंग के लोगों का परिचय, पाटलिपुत्र का चित्र, गंगा का गुणगान, पाटलिपुत्र के प्रति कलिंगनिवासियों की मनोवृत्ति, बौद्ध धर्म के उद्देश्य, संघमित्रा और नीलमणि के मधुर सम्बन्ध इत्यादि सूचनाएँ, जो कथानक के महत्वपूर्ण अंश हैं, संवादों के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं।

'संघमित्रा' लघुनाटिका को उपूदप सजावट-कसावट बेनीपुरी की शिल्प-शैली की उत्कृष्टता का ही परिणाम है। यह कहा जा सकता है कि इस कृति में बेनीपुरी ने तथ्य और कथ्य का मणिकांचन संयोग प्रस्तुत किया है। चरित्र-परिवर्त्तन कृत्रिमता के साथ, नहीं मनोवैज्ञानिक सहजता के साथ होता है; नाटिका स्वाभाविकता के साथ निष्कर्ष पर पहुँचती है और मंचन की दृष्टि से सफल उतरती है।

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघमित्रा के पात्र

संघमित्रा

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी प्रणीत लघुनाटिका 'संघमित्रा' की नायिका है संघमित्रा, ...ा सम्राट अशोक की पुत्री तथा महेन्द्र की छोटी बहन है। यों तो, संघमित्रा ...शाली की 'प्रतिप्रसिद्ध नारी' की तरह सौन्दर्य-सुमनों से न तो सुसज्जित ही ... और न हजार-हजार राजमुकुटों से चर्चित ही; तथापि वह 'नारीरूप को ...तिफलित करती है', निस्सन्देह !

अम्बपाली जैसी संघमित्रा सोमरस की ऊर्जायित तन्द्रा में अलसित और ...वलास-वासना में व्यस्त रहा करने वाली, अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त कोई अल्हड़ किशोरी नहीं। वह यशोधरा की तरह जाया और जननी है, करुण कहानी का मानवीय अभिलेख है, और है संवेदनाओं की साकार प्रतिमा।

संघमित्रा मोम-से मृदुल अन्तर वाली एक ममतामयी नारी है, जिसके लिए युद्ध शब्द भी जानलेवा है। युद्ध से साक्षात्कार की बात तो दूर रही, इसकी चर्चा मात्र से ही 'उफ्', 'ओह-ओह' या 'ओहो' कहकर अपनी दयार्द्रता तथा सुकुमार भावुकता का परिचय देने वाली संघमित्रा प्रेम और प्रतिज्ञा का प्रतिमान है। 'रक्त का समुद्र' भी होता है ! संघमित्रा इस नृशंसता से व्यथित होकर वेदना में डूब जाने वाली संवेदनाओं के तन्तुओं से गढ़ी हुई एक छवि है, एक काया है।

कलिंग-युद्ध में आहत और सम्राट अशोक के 'आध्यात्मिक कायाकल्प का चलता-फिरता प्रमाण' नीलमणि के प्रति आसक्त संघमित्रा चुपचाप प्रेम पालती है अपने हृदय के नीरश कोण में, किन्तु हर मतलब को प्रकट करने के लिए शब्द नहीं चाहती। भावनाओं को भाषा चाहिए भंगिमाओं की या भाषण की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघमित्रा भंगिमाओं की भाषा में ही अपने भावों को व्यक्त करने की चेष्टा करती है, किंतु जब शब्द उसकी भावनाओं की पारदर्शिता दर्शा देते हैं, तो वह एक कवियित्री-सी बन जाती है। संघमित्रा की भावप्रवणता उसके पाटलिपुत्र-वर्णन में सहज ही अभिव्यक्त हैं।

"कितना सुन्दर दृश्य ! एक ओर से शोणभद्र का सुनहला पानी, दूसरी ओर से सदानीरा की तुरन्त-तुरन्त हिमालय से उतरी शीतल जलधारा ! दोनों बाँहें पसार कर दौड़कर, गंगा मैया से मिल रहे हैं मानों ! वह कलकल, वह कुलकुल ! यहाँ से भी हम शब्द सुन रहे हैं, कुमार ! कितना सुन्दर !

× × ×

अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों के स्पर्श से गंगा की ऊर्मियाँ किस प्रकार स्वर्णिम-स्वर्णिम हो रही हैं और उनपर नागरिकों की सजी-सजायी नौकाएँ, पुष्पवाटिका में तितलियाँ की तरह किस शान से तैर रही हैं···" तो, इसपर नीलमणि उसे कह देता है—'रहने दीजिए, आप बिल्कुल कवि है; आप सत्य नहीं देख सकतीं।" किंतु, संघमित्रा को अपनी सत्यानुभूति में संशय नहीं, अस्तु, आत्मबोध को अभिव्यक्त करते हुए बोल देती है—"सत्य नहीं देख सकती ! तो क्या मैं झूठ कह रही हूँ ?" संघमित्रा की यह उक्ति उसके विश्वासी स्वभाव की परिचायिका है।

नीलमणि को अपनी भावनाओं का अर्घ्य अर्पित कर, संघमित्रा 'प्लेटोनिक लव' (Platonic love) का निर्वाह करती है। प्रिय की प्रसन्नता की सर्वदा आकांक्षिणी संघमित्रा प्रिय के स्वास्थ्य के संतुलन के प्रति भी सदैव सचेष्ट रहने वाली प्रेमिका है। भावावेश में नीलमणि जब थोड़ी गतिमयता दिखाता है, तो आकुल हो वह कह उठती है—'कुमार, कुमार ! अभी तुम स्वस्थ नहीं हुए कुमार ! उफ्—" संघमित्रा आसक्ति में अंधी नहीं, सचेतन भी है। तभी तो, नीलमणि को वह एक चुनौती मानती हैं। मल्लिका से उसने कहा भी—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"और नीलमणि एक दिन मित्रा के शरीर से भी यह रंगीन चीर उतार कर रहेगा, मल्ली !" शायद, यह चीर-परिवर्त्तन की चर्चा आगत में होने वाले परिवर्त्तनों का संकेत है। संकेतों की भाषा में बातचीत करने वाली संघमित्रा तार्किकता से पूर्ण भी है। 'प्रेम और युद्ध एक ही सिक्के के दो रुख हैं' यह परिज्ञान संघमित्रा के बोधिलाभ का प्रमाण है। वह परम्परा को पसन्द अवश्य करती है, किंतु रूढ़िवादिता को नहीं। यह उसकी प्रगतिशीलता के चलते ही है। विवाह की प्रथानुकूल पद्धति के प्रति वस्तुतः वह आक्रोश से पूर्ण है—"हाँ, पिता शरीर का दान करता है। पति का नैतिक अधिकार शरीर पर होता है, जिसको जो अधिकार है, उसे मिलना ही चाहिए, मल्लिके !" यह कथन इस बात का प्रमाण है कि तन भर से ही संघमित्रा अपने पति अग्निबर्मा से संबंधित है, क्योंकि अपनी इच्छा से नहीं, पिता की राज्याज्ञा से वह उन्हें वरने का विवश हुई। मन से तो वह एक स्वप्न को निवेदिता है। स्वप्न—नीलमणि का, भावों के इन्द्रधनुष का। आँखों में एक स्वप्न पालने वाली संघमित्रा अपने आंचल में सत्य को भी पालती है—सुमन को, जो बेटा है। स्वप्न और सत्य, मन और तन, की परीक्षा में सम्मिलित हो चुकने के बाद वह 'इससे भी बड़ी साधना की कसौटी' पर परखी जाने के लिए स्वयं को समर्पित कर देती है। "मैं सिंहल में भगवान बुद्ध के शांति धर्म का संदेश लेकर जा रही हूं।" और, संघमित्रा राजपुत्री से भिक्षुणी बन कर चीवर धारण किये सिंहल द्वीप के अभियान पर प्रयाण कर देती है।

धर्म आस्था का ही पर्याय है। और, इसी आस्था का सम्बल लिये संघमित्रा सिंहल आती है। 'हम बदल गये हैं, हम संसार को बदलने चले हैं' ये हैं संघमित्रा के दृढ़निश्चयी भाव। 'तुमलोग जिस ओर बढ़ोगे, कहाँ तक जा सकोगे, कोई कल्पना नहीं कर सकता' कह कर नीलमणि ने संघमित्रा के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त किये। इस उद्‌गार में सन्निहित है संघमित्रा के संकल्पपूर्ण स्वभाव की सराहना। अपने इसी संकल्पित प्रयास के चलते पाटलिपुत्र की सघमित्रा सिंहल में भी आकर देवी बन जाती है, अमर हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती है। बोधि-बिरवे को धर्म की विशालता से सिंचित कर संघमित्रा बोधिवृक्ष बना देती है।

और, तब से बोधिवृक्ष के अनगिनत हरे-सूखे पत्तों पर संघमित्रा एक सुरभित संज्ञा बनी समाहृत है। अशोक की बेटी संघमित्रा, बेनीपुरी की रचना संघमित्रा, धर्म और साहित्य की संघमित्रा।

महेन्द्र

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित लघुनाटिका 'संघमित्रा' के एक प्रमुख पात्र के रूप में महेंद्र का प्रादुर्भाव होता है। महेंद्र पाटलिपुत्र की पवित्र धरती पर उत्पन्न सम्राट अशोक के ज्येष्ठ पुत्र हैं, पौरुष और पराक्रम से पूर्ण। प्रियदर्शिनी संघमित्रा के अग्रज भ्राता महेन्द्र चरित्र की परिवर्त्तनीयता के प्रेरक दृष्टांत हैं।

युद्ध का रिपोर्ताज प्रस्तुत करने वाले महेन्द्र प्रकृति से युद्ध के प्रेमी नहीं। हृदय हिंसा को स्वीकारनेवाला नहीं, इसलिए वे युद्ध की विभीषिका का वर्णन कर अनायास तरल हो जाते हैं। 'बड़ी घमासान! जब शाम को हम विजयी हुए, तो पाया, हम मुर्दों के देश के राजा हैं। उफ! रक्त का समुद्र हिलोरें ले रहा था; मानवता चीख-पुकार कर अंतिम दम तोड़ रही थी!" महेन्द्र के ये मर्मस्पर्शी कथन हैं।

इतना ही नहीं महेन्द्र की भावनाओं में प्रतिशोध की तिक्तता नहीं, वे पूर्वाग्रहों से ग्रस्त नहीं। तभी तो शत्रु कलिंग की प्रशंसा मुग्ध कंठ से वे कर पड़ते हैं—

"सुन्दर और बहादुर भी! वे ताँबे की प्रतिमाएँ गुस्से में लाल अंगारे-सी दहकती मालूम देती थीं! सबके हाथों में हथियार, सबके मुँह में जयनाद! कलिंग की वाहिनी हम पर इस तरह टूटी, जैसे भूखे शेर शिकार पर टूटते हैं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित्र की निर्मलता इन शब्दों में मुखर हुई है और महेन्द्र का महान रूप झाँकता है इन पंक्तियों में।

किंतु, महेन्द्र अपने पौरुष के विश्वासी भी हैं। शौर्य और विजय पौरुष के पोषक तत्त्व हैं। अस्तु, महेन्द्र, जो पुरुषार्थ के प्रतीक हैं, मुर्दों की निर्भीकता को एक स्वाभाविक गुण मानते हैं। संघमित्रा से वे कहते भी हैं, "पगली, मर्द डरा नहीं करते।" महेन्द्र के ये वाक्य उनके वीरत्व के प्रमाण हैं।

महेन्द्र मृदुल हैं, तो महेन्द्र कठोर भी है—कुसुमादपि मृदूलाणि, वज्रादपि कठोर ! अथवा कहें कि महेन्द्र अहिंसा के अवतार हैं। अहिंसा—जो कायरता और शक्तिहीनता नहीं, इसी के प्रतिरूप हैं महेन्द्र।

महेन्द्र व्यक्ति की मर्यादाओं का मुल्यांकन, व्यक्ति की प्रभावक शक्तियों के आधार पर ही करने के अभ्यासी हैं। भौतिकता के सूत्रों के सहारे व्यक्ति की परिपूर्णता मापी नहीं जा सकती। आध्यात्म भी एक तत्त्व हैं। सम्राट अशोक के 'आध्यात्मिक कायाकल्प का चलता फिरता प्रमाण 'कलिंग की प्रतिहिंसा की जीवित प्रतिमा' नीलमणि के प्रति स्नेह भरे उद्गारों को प्रकट कर महेन्द्र नीलमणि की महत्ता निःसंकोच स्वीकारते हैं। यह स्वीकृति महेन्द्र की महत्ता को ही प्रतिपादित करती है। नीलमणि की ओर संकेत करते हुए संघमित्रा से महेन्द्र का कथन—'देखो, वहाँ प्रकोष्ठ के सुनसान कोने पर निश्चल खड़ा हुआ किस तरह गंगा की ओर घूर रहा है।' नीलमणि के प्रति उनके मन के आदर-भाव को व्यक्त करता है।

महेन्द्र की रचना बेनीपुरी ने केवल कथा को प्रारम्भ करने के लिए ही की है। कहा जा सकता है, कि इस लघुनाटिका के कथानक को जन्म देने का कार्य, सूत्रकार जैसी भूमिका निभाकर, महेन्द्र का चरित्र सम्पादित करता है। रसायन शास्त्र की भाषा में महेन्द्र को धनात्मक उत्प्रेरक कहा जाए, तो ठीक ही होगा।

जो प्रारम्भ करता है, वहीं अंत भी करता है, यही विधान है। In my beginning is my end, is my end is my begining

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथन सत्य हैं। 'संघमित्रा' के उद्देश्य की प्राप्ति का प्रारम्भ महेन्द्र के प्रादुर्भाव से हुआ, तो अंत भी महेन्द्र के साथ होता है। प्रथम दृश्य से अनुपस्थिति के वाद अंतिम दृश्य में महेन्द्र की उपस्थिति महेन्द्र की निर्लिप्त उत्प्रेरकता को प्रमाणित करती है। किंतु, प्रारम्भ के और अंत के महेन्द्र में रासायनिक परिवर्त्तन हो जाता है। पाटलिपुत्र के राजप्रासाद के महेन्द्र, सिंहल-द्वीप के भिक्षु महेंन्द्र बन जाते हैं। पौरुष परिनिर्वाण प्राप्त कर शांतिप्रिय बन जाता हैं, राजकुमार भिक्षु वन जाता है। चरित्र एक चित्र है, मानो, चाहे जो रंग हो इसका! चित्र के रंगों की रेखाओं में अनुभूति स्पंदित होती है। महेन्द्र ने अपने चरित्र के चित्र का रंग वदल दिया है, बोधिलाभ कर लेने के वाद। रक्त संबंध की सीमाएँ जव व्यक्ति लाँघ जाता है तो समता की ज्योति उसकी आँखों में भर जांती हैं। महेन्द्र के नयन सर्वोदय के इसी प्रकाश से विभासित हैं।

"अब हम भाई-बहन नहीं रहे। अब हम संघ के सदस्य-सदस्या हैं। हमलोग रक्त संबंध छोड़ चुके हैं।" कहकर महेन्द्र ने संघमित्रा के ममत्वपूर्ण भ्रम का निवारण कर देते हैं। 'संघं शरणं गच्छामि' 'धर्म्मं शरणं गच्छामि' महेन्द्र के चरित्र के दो नियामक 'संघमित्रा' लघुनाटिका के परिणाम बन जाते हैं।

महेन्द्र उस महाप्राण का नाम है जो परिवर्त्तन को स्वीकार लेता है, पलायन को नहीं। महेन्द्र वह महिमामंडित संज्ञा है, जिसने 'संघमित्रा' लघुनाटिका को विशेषणों और क्रियाओं से भर दिया। महेन्द्र पाटलिपुत्र से सिंहल तक के विस्तार का अदृश्य सेतु। राजप्रासाद संघाराम तक का यात्री महेन्द्र बौद्ध इतिहास के सारांश का साकार स्वरूप है।

नीलमणि

वस्तुतः नीलमणि की रचना कर 'संघमित्रा' लघुनाटिका के नाट्यकार श्री रामवृक्ष वेनीपुरी ने अपनी नाट्यकृति को कलेवर प्रदान किया है। अपने प्रादुर्भाव से नीलमणि 'संघमित्रा' का मेरुदण्ड बन जाता है। संघमित्रा का चरित्र नीलमणि के चित्र-पट convass पर ही उभरता-खुलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस लघुनाटिका को दिशा और बल प्रदान करने वाला नीलमणि स्वयं अपने चरित्र के वर्त्तमान को ऐतिहासिक बल कितना देता है, यह उसके परिचय में अभीष्ट नहीं। अस्तु, इस नाट्यकृति के एक महत्त्वपूर्ण पात्र की भूमिका में ही नीलमणि का अध्ययन परिहार्य है।

नीलमणि 'कलिंग की प्रतिहिंसा की जीवित प्रतिमा' और सम्राट अशोक के 'आध्यात्मिक कायाकल्प का चलता-फिरता प्रमाण' 'ताम्बे के रंग का, 'सुन्दर और बहादुर भी'। 'मुर्दों के बीच से कोई उठ खड़ा हुआ', जो अशोक को युद्ध-भूमि से लौटती राह में मिला; वह नीलमणि ही है। प्रतिहिंसा का प्रतिमान नीलमणि, जिसने अशोक की हत्या का प्रयास किया था, अब कलिंग का उपहार बना सम्राट अशोक के यहाँ समादृत है।

पाटलिपुत्र के सम्मान की भावनाओं में भी नीलमणि को षड्यंत्र की गंध मिलती है, चूँकि, वह आपादमस्तक प्रतिहिंसा से पूर्ण है। अनुभव की तिक्तता ने उसे रूखड़ा बना दिया है, इसलिए वह 'सत्यम्' तो बोलता है, किन्तु 'प्रियम्' नहीं।

पाटलिपुत्र की पावनी गंगा की पवित्रता में सन्देह व्यक्त कर तथा 'गंगा मैया के पानी में कितना रक्त है, और कितने आँसू' का उपहास की भावना से उत्पन्न व्यंग्य बोल कर नीलमणि चोट खाए हुए नाग की तरह फूँफकार छोड़ता है, जिससे विष के बाण छूटते हैं। पाटलिपुत्र की गंगा की रजत धवलता में नीलमणि रक्त और आँसू तैरते देखता है, गंगा की शुद्धकारिणी धारा में साम्राज्य लिप्सा पाता है, गंगा को ढोंग की मूर्त्ति मानता है और पाटलिपुत्र में फरेब ही फरेब ही देखता है। नीलमणि का यदि मनोवैज्ञानिक परीक्षा की जाए, तो उसकी इन भावनाओं का औचित्य प्रमाणित हो जाएगा। वह संघमित्रा से कहता है, "शान्त! आह, मैं शांत हो पाता। जिसका घोंसला जला दिया गया हो वह पंछी क्या शांत हो सकता है राजकुमारी?" नीलमणि एक पंछी है जिसका घोंसला उजड़ गया है। ऐसे में आक्रोश की उत्पत्ति अस्वाभाविक नहीं। वह मूलतः अभद्र नहीं। एमिली ब्रोन्टी के सुख्यात उपन्यास "उंदरिंग हाइट" के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीथक्लिफ के समान प्रतिशोध के लिए बाध्य होकर अभद्र हो गया है वह: "एक दिन मैं भी भद्र था, हम भी भद्र थे। किन्तु हमारी सारी भद्रता को तुम्हारे पिता ने लाशों और लोथों से ढँक दिया।" संघमित्रा को अपनी स्थिति की उत्पत्ति का कारण नीलमणि स्पष्ट कह देता है। वह आदमी बुरा नहीं है दिल का। युद्ध की हिंसा से वह प्रतिशोध पर उतारू हो गया है।

किन्तु, संघमित्रा की नर्म उंगलियों का चंदनी स्पर्श पाकर नीलमणि प्रतिशोध की लपटों को शमित भी कर लेता है। एक किरण भटक कर मिल गयी नीलमणि को, और वह पथ पा गया। संघमित्रा नीलमणि के आंदोलित जीवन में संतुलन और शमन का प्रभावक बल बनी प्रवेश करती है। सम्बन्धों में घनता उत्पन्न होती है और संघमित्रा उसे पुकार देती है 'कुमार।' नीलमणि उसे पुकार देता है 'राजकुमारी'। फिर क्या एक अनकहा दर्द बो जाता है नीलमणि संघमित्रा के मन में। किन्तु, घृणा के कारण जब दूध-सा मन फट जाता है, तो कोई शक्ति नहीं जा फिर सब कुछ जोड़ दे। क्षणिक सन्तोष का रंग दीख भले जा सकता है। घृणा और भय के मिश्रित भावों के आलोड़न से नीलमणि पाटलिपुत्र से पलायन कर पुनः अपने कलिंग भाग जाता है। जाने के पहले नीलमणि दार्शनिक मुद्रा में संघमित्रा से कहता है—विजेता और विजित की मनोदशा में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। दोनों बिल्कुल दो चीजें हैं। न तुमलोग हमें समझ सकोगे न हम तुम्हें समझ सकेंगे। हम समानान्तर रेखाएँ हैं, एक बिन्दु पर मिल नहीं सकते।" नीलमणि एक अनुभवी की भाँति तार्किक भी है।

कलिंग के प्रति असीम भक्ति के कारण नीलमणि पाटलिपुत्र में रहना पाप समझता है। उसे अपना खारा नीला सागर प्रिय है, पाटलिपुत्र उज्जवल धवल गंगा नहीं।

किन्तु, नीलमणि की आत्मा को संघमित्रा का सान्निध्य बरबस याद आता रहा, वह संघमित्रा के स्नेह से अभिभूत है। सिंहल प्रयाण पर संघमित्रा को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देख उसका प्रतिशोध जागता तो अवश्य है, किन्तु स्नेहिल स्मृतियों से वह भावना दब जाती है। और परिणाम यहाँ तक पहुँच जाता है कि नीलमणि भी सिंहल पहुँचकर संघ-धर्म स्वीकार लेता है। यह भी चरित्र-परिवर्तन का एक आदर्श ही है।

महेन्द्र पिताज्ञा से चरित्र-परिवर्तन करते हैं, तो नीलमणि स्वेच्छा से, स्नेह से। दोनों ही समान लक्ष्य के संधानी हैं, किन्तु माध्यम दोनों का भिन्न है। बेनीपुरी की सफलता नीलमणि के इस उत्कृष्ट चरित्र-रचना में स्मरणीय बन गयी है। नीलमणि नाट्यकार की उपलब्धि है, निस्संदेह।

मल्लिका

नाटक के उद्देश्य की पूर्ति में भृत्यपात्रों का योगदान शेक्सपियर और कालिदास तक ने महत्त्वपूर्ण माना है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी कृत "संघमित्रा" की मल्लिका भी अपनी उपस्थिति से इस लघुनाटिका को सम्बल प्रदान करती है, महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

यों तो, कथानक को दिशा प्रदान करने की क्षमता मल्लिका में नहीं, तथापि कथानक की विविध सूचनाओं के प्रसारण के लिए वह पृष्ठभूमि अवश्य प्रदान करती है। और, स्मरणीया बन जाती है।

राजकुमारी संघमित्रा की परिचारिका मल्लिका अपनी राजकुमारी के भावों-विचारों को आत्मीयता के सन्दर्भ में संजोकर रखने वाली एक निजी सहायिका है। यह मल्लिका ही है, जिसके माध्यम से संघमित्रा को आत्माभिव्यक्ति का अवसर और आवेष्टन प्राप्त होता है। नीलमणि के प्रति संघमित्रा कितना स्नेहसम्बद्ध है, विदित न हो पाता, यदि मल्लिका यह न पूछ बैठती, "नीलमणि को आप भूल न सकीं, राजकुमारी।" नीलमणि के स्वभाव की सराहना करती हुई संघमित्रा अपने प्रमोदगार प्रकट करने में समर्थ हो पाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है मल्लिका को हो
संघमित्रा के मन
संघमित्रा का चरि

संघमित्रा के
नहीं, वह सुमन
नीलमणि को निर्वा
का त्याग कर देगी,
पाती हैं।

कहा जा सकत
में धनचिह्न का का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi